आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य-3

एम. ए. , हिन्दी Semester-III, Paper- III

पाठ के लेखक

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.
एम.ए., एम. फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

डॉ. एम. मंजुला
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

संपादक

प्रो. अन्नपूर्णा सी
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद

निर्देशक

डॉ . नागराजु बट्टू
M.H.R.M, M.B.A, L.L.M, M.A(Psy), M.A(Soc), M.Phil, Ph.D
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्या नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर – 522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222, Cell No. 9848477441
0863-2346259 (अध्ययन सामग्री)
Website : www.anucde.info
E-mail : anucdesemester2021@gmail. Com

एम. ए., हिन्दी

First Edition :2023

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. HINDI Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasham.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The center will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B. Com courses at the Degree level and M.A., M. Com, M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editor sand Lesson-writer so the Centre who have help edit the seen devours.

Prof. P. Rajasekhar
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

SEMISTER – III

PAPER III: HINDI LITERATURE OF ANDHRAS

303HN21 – आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य

पाठ्य पुस्तक:

आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य :

1. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य - डॉ. विजयराघव रेड्डी।
2. हिन्दी-तेलुगु एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. जी. सुन्दर रेड्डी

पाठ्य विषय:

1. भारतीय भाषाओं का परिचय और वर्गीकरण 1.1-1.19
2. तेलुगु भाषा का इतिहास 2.1-2.17
3. प्राचीन कालीन तेलुगु साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ 3.1-3.13
4. आधुनिक तेलुगु साहित्य के प्रेरणा स्रोत 4.1-4.10
5. तेलुगु साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय 5.1-5.18
6. हिन्दी – तेलुगु का समकालीन साहित्यक 6.1-6.09
7. आन्ध्र में मौलिक हिंदी लेखन- पद्य साहित्य 7.1-7.11
8. आन्ध्र में मौलिक हिंदी लेखन- गद्य साहित्य 8.1-8.15

सहायक ग्रंथ:

1. तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्माना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एसए सूर्यनारायण वर्मा ।

2. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य – डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- सम्पादक- आचार्य यार्लगड्ड लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

----

1. भारतीय भाषाओं का परिचय और वर्गीकरण

1.0. उद्देश्य

इस इकाई में भारतीय भाषाओं का परिचय और वर्गीकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. प्रमुख भारतीय भाषा-परिवारों का सामान्य परिचय दे सकेंगे।
2. भारोपीय भाषा-परिवार की ऐतिहासिक विकास का परिचय भी दे सकेंगे।
3. इंडो-आर्यन भाषा परिवार या हिंद्वार्य भाषा परिवार के बारे में बता सकेंगे।
4. द्रविड़ भाषा-परिवार की भाषाओं के ऐतिहासिक विकास का परिचय दे सकेंगे।
5. एस्टो-एशियाटिक भाषा परिवार का बारे में बता सकेंगे।
6. टिबटो-बर्मन भाषा-परिवार का भी परिचय दे सकेंगे।

रूपरेखा

1.1. प्रस्तावना

1.2. भाषा

1.3. भारतीय भाषाएँ

1.4. भारतीय भाषाओं का परिचय और वर्गीकरण

I. इंडो- आर्यन भाषा परिवार या हिन्द्वार्य भाषा परिवार (Indo-Aryan family of language)

II. द्रविड़ भाषा परिवार (Dravidian family of language)

III. एस्टो- एशियाटिक भाषा परिवार (Astro-Asiatic family of language)

IV. टिबटो-बर्मन भाषा परिवार (Tibetan-Barman family of language)

1.5. सारांश

1.6. बोध प्रश्न

1.7. सहायक ग्रंथ

1.1. प्रस्तावना

भारत अनेक भाषाओं का देश है। किन्तु अनेक होते हुए भी एक-दूसरे से पूरी तरह से भिन्न नहीं हैं। इन भाषाओं की गहरी समझ अनुवाद को लिए कई तरह से उपयोगी है। अतः इस इकाई में हम भारतीय भाषाओं की प्रकृति, संरचना और इतिहास का परिचय प्राप्त करेंगे। अधिकांश भारतीय भाषाएँ विश्व के दो विशाल भाषा-परिवार से संबंध रखती हैं, भारोपीय और द्रविड़। इन दो परिवारों के अतिरिक्त आस्ट्रो-एशियाई (मुंडा) और चीन -तिब्बती

परिवार की भाषाएँ भी भारत में बोली जाती हैं। अतः इस इकाई में भाषा परिवारों की व्याख्या और एक परिवार की भाषाओं के बीच संबंध का परिचय दिया गया है। इसके पश्चात भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल सभी भाषाओं का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है।

1.2. भाषा

समस्त जीव-राशियों में एकमात्र मानव अपने भावों को वाक् रूप में व्यक्त कर सकता है। मानव अपने अभिप्रायों व विचारों को बाहर प्रकट करने के लिये मुँह के साधन से जिन ध्वनियों का उच्चारण करता है, उन अर्थपूर्ण ध्वनियों के समुदाय को ही भाषा कहते हैं। 'भाष्' नामक संस्कृत धातु से निकलने के कारण इस शब्द का अर्थ होता है, "जो बोली जाती है।" "भाष्यते इति भाषा" अर्थात् जो बोली जाती है, उसे भाषा कहते हैं। मानव के पास जो अद्भुत शक्ति है, वह है बोलना। मानव को जानवर से अलग कर उसकी मेधाशक्ति को बढ़ानेवाली है भाषा। समस्त चराचर जगत में बोलने की शक्ति रखनेवाला एकमात्र जीव मानव है। भाव का व्यक्तीकरण ही भाषा का आशय है। समस्त मानव जाति की साझी संपत्ति भाषा है।

विश्व की सबसे पहली भाषा कौन-सी थी, वह कब पैदा हुई ? कहाँ पैदा हुई ? वास्तव में भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? ऐसे प्रश्नों के उत्तर आज भी उपलब्ध नहीं हैं। इस विषय पर भाषा वैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं रहा । हर एक भाषा वैज्ञानिक ने अपने सिद्धान्त के अनुसार अपना तर्क प्रस्तुत किया। इन्होंने अपने- अपने वादों को अलग- अलग नाम दिए। लगभग सभी वाद विभिन्न संप्रदायों, विश्वासों व कल्पनाओं के आधार पर पैदा हुए, ऐसा कहे बिना नहीं रहा जाता, लेकिन आलोचनात्मक और हेतुवाद की दृष्टि से पैनी व गहरी नज़र से अनुशीलन करें तो यह कहा जा सकता है कि "स्वतः सिद्धवाद" ने ही भाषा के आविर्भाव का अच्छा निरूपण किया।

विश्व के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न जातियों के लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं। फिलहाल संसार में लगभग 5,000 भाषाओं का व्यवहार हो रहा है, ऐसा भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है। संसार की आबादी लगभग 700 करोड़ से ऊपर है। भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि विश्व में आरंभ में एक ही भाषा थी, कालान्तर में अनेक भाषाएँ उत्पन्न हुई, जैसे छोटा दीखनेवाला विश्व, वृद्धि पाकर बड़े आकार में विस्तृत हो गया, उसी प्रकार भाषाएँ भी विस्तृत होती गयीं। इसे "एक मूल भाषावाद" कहते हैं। इसके विपरीत कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिकों ने यह अभिप्राय व्यक्त किया कि प्रारंभ में अनेक भाषाएँ उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे और अधिक भाषाएँ बनीं । इसी को "बहुमूलभाषावाद" कहते हैं। मोटे तौर पर भाषावैज्ञानिकों ने इस बात को स्वीकार किया कि प्रारंभ में एक ही भाषा जो थी, उसने अनेक परिवर्तनों को प्राप्त किया। कालान्तर में उसी भाषा से अनेक भाषाओं का जन्म हुआ।

सन 1906 में तत्कालीन सरकार ने भारतीय भाषाओं पर समग्र रूप से शोध कार्य संपन्न कराने के उद्देश्य से प्रमुख भाषा वैज्ञानिक 'सर जार्ज ग्रियर्सन' को प्रधान संपादक के रूप में नियुक्त किया। इनके अथक परिश्रम से "भारतीय भाषायी सर्वेक्षण" (Linguistic Survey of India) के नाम 11 खण्ड सन् 1927 में मुद्रित हुए। इन खण्डों में 175 भाषाओं व 544 आंचलिक भाषा रूपों का सर्वेक्षण किया गया है।

ग्रियर्सन के प्रधान संपादन में प्रकाशित 11 खण्डों में चौथा द्रविड़ भाषाओं से संबंधित है। इस चौथे खण्ड का संपादन नार्वे के प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक 'स्टेनकोनो' ने किया। इस खण्ड में द्रविड़ भाषाओं से संबंधित अनेक मुख्य बातों को स्थान दिया गया। स्टेनकोनो ने उस समय जिन 17 भाषाओं का पता लगाया, उनका उल्लेख किया। फिलहाल इनकी संख्या 23 है। द्रविड़ भाषाओं पर अब भी शोध कार्य जारी है। इस संख्या के बढ़ने की पूरी संभावना है।

2. भारतीय भाषाएँ

चाहे भाषा कुछ भी हो, भाव एक ही है। भाव को व्यक्त करने के लिए भाषा की आवश्यकता है। भाषावैज्ञानिकों का अभिप्राय है कि भारत में 1652 भाषाएँ हैं। भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को ही स्थान मिला। इन्हीं का व्यवहार संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त राजभाषाओं के रूप में हो रहा है।

पहले पहल भारत के संविधान ने केवल 14 भाषाओं को ही राजभाषाओं के रूप में मान्यता प्रदान की। वे भाषाएँ ये हैं -

(1) तमिल (2) कन्नड़

(3) मलयालम (4) तेलुगु

(5) पंजाबी (6) मराठी

(7) बंगला (8) हिन्दी

(9) उर्दू (10) उड़िया

(11) कश्मीरी (12) गुजराती

(13) संस्कृत (14) असामी।

सन् 1967 में संविधान के 21वें संशोधन द्वारा **"सिन्धी** भाषा को 15वीं राजभाषा के रूप में मान्यता मिली। सन् 1992 में संविधान के 71वें संशोधन द्वारा **"कोंकणी, मणिपुरी"** और **"नेपाली"** नामक तीन भाषाओं को आठवीं अनुसूची में मिलाया गया। इस प्रकार कुल 18 प्रान्तीय भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा की मान्यता प्राप्त हुई। 23.12.2003 में 100 वें संशोधन द्वारा **19. बोडो**, **20. डोग्री, 21. मैथिली** व **22. संथाली** भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा की मान्यता प्राप्त हुई।

3. भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण - निम्नलिखित तालिकाएँ -तेलुगु भाषा का इतिहास-संपादक- आचार्य वेलमला सिम्मन्ना, हिन्दी रूपांतर-प्रो. एस. ए. सूर्यनारायण वर्मा पुस्तक से संपन्न हुआ है।

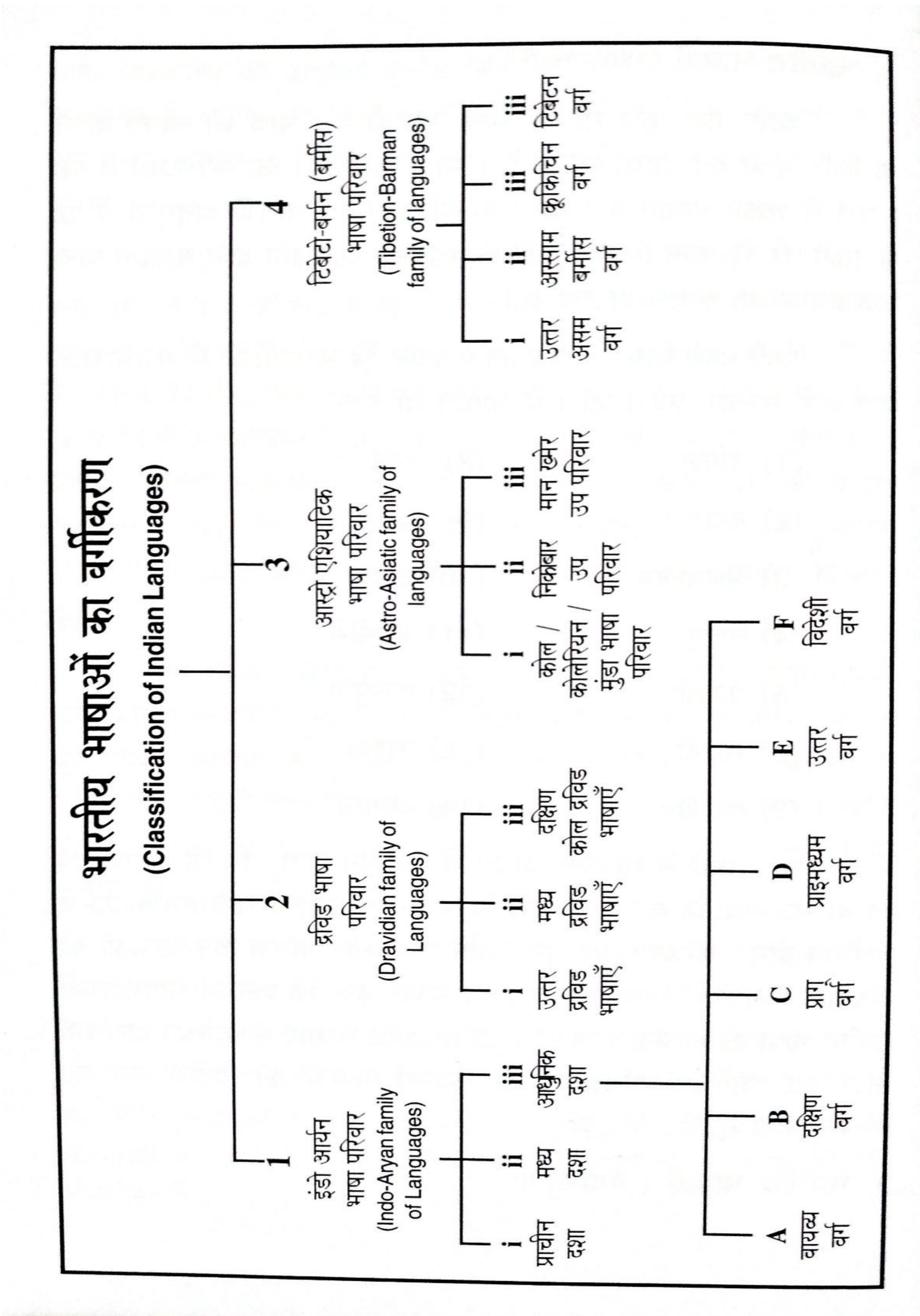
भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण
(Classification of Indian Languages)
1
इंडो आर्यन भाषा परिवार
(Indo-Aryan family of Languages)
i प्राचीन दशा
ii मध्य दशा
iii आधुनिक दशा
A वायव्य वर्ग
B दक्षिण वर्ग
C प्राग् वर्ग
D प्राइमध्यम वर्ग
E उत्तर वर्ग
F विदेशी वर्ग
2
द्रविड भाषा परिवार
(Dravidian family of Languages)
i उत्तर द्रविड भाषाएँ
ii मध्य द्रविड भाषाएँ
iii दक्षिण कोल द्रविड भाषाएँ
3
आस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार
(Astro-Asiatic family of languages)
i कोल / कोलेरियन / मुंडा भाषा परिवार
ii निकोबार उप परिवार
iii मान ख्मेर उप परिवार
4
टिबेटो-बर्मन (बर्मीस) भाषा परिवार
(Tibetion-Barman family of languages)
i उत्तर असम वर्ग
ii अस्साम बर्मीस वर्ग
iii कुकिचिन वर्ग
iii टिबेटन वर्ग

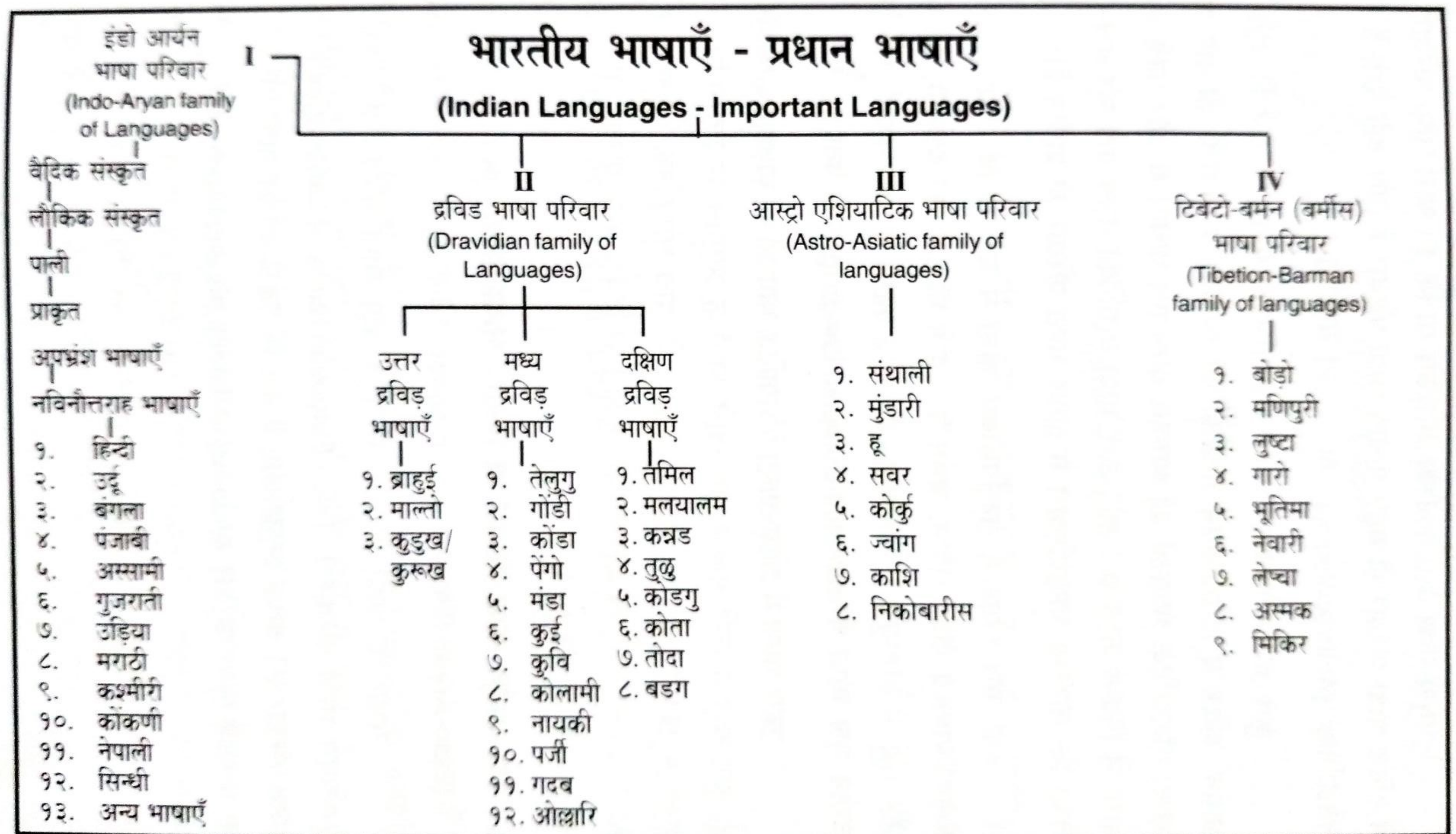
भारतीय भाषाएँ - प्रधान भाषाएँ
(Indian Languages - Important Languages)
I
इंडो आर्यन भाषा परिवार (Indo-Aryan family of Languages)
वैदिक संस्कृत
लौकिक संस्कृत
पाली
प्राकृत
अपभ्रंश भाषाएँ
नविनौत्तराह भाषाएँ
१. हिन्दी
२. उर्दू
३. बंगला
४. पंजाबी
५. अस्सामी
६. गुजराती
७. उड़िया
८. मराठी
९. कश्मीरी
१०. कोंकणी
११. नेपाली
१२. सिन्धी
१३. अन्य भाषाएँ
II
द्रविड भाषा परिवार (Dravidian family of Languages)
उत्तर द्रविड़ भाषाएँ
१. ब्राहुई
२. माल्तो
३. कुडुख/कुरूख
मध्य द्रविड़ भाषाएँ
१. तेलुगु
२. गोंडी
३. कोंडा
४. पेंगो
५. मंडा
६. कुई
७. कुवि
८. कोलामी
९. नायकी
१०. पर्जी
११. गदब
१२. ओल्लारि
दक्षिण द्रविड़ भाषाएँ
१. तमिल
२. मलयालम
३. कन्नड
४. तुळु
५. कोडगु
६. कोता
७. तोदा
८. बडग
III
आस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार (Astro-Asiatic family of languages)
१. संथाली
२. मुंडारी
३. हू
४. सवर
५. कोर्कु
६. ज्वांग
७. काशि
८. निकोबारीस
IV
टिबेटो-बर्मन (बर्मीस) भाषा परिवार (Tibetion-Barman family of languages)
१. बोडो
२. मणिपुरी
३. लुष्टा
४. गारो
५. भूतिमा
६. नेवारी
७. लेप्चा
८. अस्मक
९. मिकिर

प्रमुख भाषा वैज्ञानिकों का अभिप्राय था कि इन चारों भाषा परिवारों में द्रविड़ भाषा परिवार ही बहुत प्राचीन भाषा परिवार है और वही देशी है। नृवैज्ञानिकों (Anthropologists) का मत भी यही था। कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिकों ने यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि 'इंडो- आर्यन', 'द्रविड़' व 'टिबेटो – बर्मन' भाषाओं का व्यवहार करनेवालों की अपेक्षा 'आस्ट्रो-एशियाटिक' भाषाओं का व्यवहार करनेवाले प्राचीन थे और पहले से भारत में निवास करते थे। अधिकतर भाषा वैज्ञानिकों ने तो यही मत व्यक्त किया कि भारतीय भाषा-परिवारों में द्रविड़ भाषा परिवार ही प्राचीन है।

ई. सन् 1786 में सर 'विलियम जोन्स' ने यह प्रस्ताव किया है कि संस्कृत भाषा व ग्रीक, लैटिन, जर्मन व अंग्रेजी भाषाओं की ध्वनियों, शब्दों और अर्थों में सारूप्यताएँ व साम्यताएँ दीखने के कारण ये सारी भाषाएँ एक ही प्राचीन मूल भाषा "Proto-Indo-European Language" से पैदा हुई। उत्तर भारत में द्रविड़ - आस्ट्रो - ऐशियाटिक भाषाओं का व्यवहार करनेवाले जो लोग रहते थे, उन्हें संस्कृत बोलनेवाले आर्यों के आगमन पर जबरन निचले प्रान्तों में खदेडा गया। कालांतर में जातियों के बीच सांस्कृतिक विनिमय के कारण उन भाषाओं का आदान-प्रदान हुआ। पर टिबेटो-बर्मन परिवार तो अन्य भाषाओं के प्रभाव से दूर था।

I. इंडो-आर्यन भाषा परिवार या हिन्द्वार्य भाषा परिवार (Indo-Aryan family of Languages)

संसार के भाषा परिवारों में बहुत बड़ा भाषा परिवार है, "इंडो- यूरोपियन भाषा परिवार।" (Indo-European family of Languages) इस भाषा परिवार की अनेक अंतर्शाखाएँ हैं। उनमें "इंडो-आर्यन भाषा परिवार" या हिन्द्वार्य भाषा परिवार (Indo-Aryan family of Languages) है।

वैदिक संस्कृत

लौकिक संस्कृत

पाली

प्राकृत

अपभ्रंश भाषाएँ

नवीनौत्तराह भाषाएँ

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
हिन्दी	उर्दू	बंगला	पंजाबी	गुजराती	असामी	उड़िया	मराठी	कश्मीरी	कोंकणी	नेपाली	सिन्धी	**आन्ध्र भाषा**

● वैदिक संस्कृत

हिन्द्वार्य भाषाओं में वैदिक संस्कृत प्राचीन भाषा है। इस भाषा से अनेक भाषाओं का जन्म हुआ। भारत देश की सारी भाषाओं पर संस्कृत भाषा का प्रभाव दिखता है। वेदों में अतिप्राचीन "ऋग्वेद" है। इसीलिए भारत देश में पहला ग्रंथ "ऋग्वेद" है, ऐसा भाषा वैज्ञानिकों ने निर्धारित किया। भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि यह ई. पू. 1500 वर्ष के पहले बना। पुराने जमाने में वेदों को सुनकर मौखिक रूप से याद किया करते थे। इसीलिए इन्हें "श्रुतियाँ" कहा करते थे। लिखित रूप में भारत देश में उपलब्ध सारे ऐतिहासिक आधारों से व मुद्रित रूप में हमें प्राप्त सर्वप्रथम ग्रंथ यास्क कृत "निरुक्त" है।

भाषा वैज्ञानिकों का अभिप्राय है कि संस्कृत भाषा में प्राप्त "ऋग्वेद" के साथ विश्व साहित्य का आविर्भाव हुआ है। इस बात पर भिन्न-भिन्न अभिप्राय व्यक्त हुए हैं। इसके बाद संस्कृत में यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद का आविर्भाव हुआ। ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद आदि ग्रंथ वेदों के विवरण ग्रंथों के रूप में आए हैं।

● लौकिक संस्कृत

संसार में मुद्रण यंत्र के आने के बाद सबसे पहले मुद्रित ग्रंथ (1455) "बाइबिल" है। तेलुगु में सबसे पहले मुद्रित ग्रंथ (1815-17) "स्वर्ग की ओर ले जानेवाला मार्ग" के नाम से प्रचलित है। यह भी बाइबिल ग्रंथ ही है। वाल्मीकि कृत "रामायण" व व्यास कृत "भारत" संस्कृत भाषा के ही हैं। पाणिनी कृत "आष्टाध्यायी" (व्याकरण) ग्रंथ ने विश्व के प्रमुख भाषा वैज्ञानिकों व वैयाकरणों की प्रशंसा प्राप्त की। ब्लूमफ़ील्ड ने "पाणिनी" के व्याकरण को "मानव की मेधाशक्ति का महान् गोपुर" कहा है। कालिदास ने "अभिज्ञान शाकुंतलम", "माळविकाग्निमित्रम्" व "विक्रमोर्वशीयम्" नामक सुप्रसिद्ध नाटक लिखे। उसी ने "रघुवंशम", "कुमार संभवम्", "मेघ संदेशम" और "ऋतुसंहारम्" आदि महाकाव्य लिखे। भास ने "प्रतिमा" और "स्वप्नवासवदत्ता" आदि नाटक लिखे। भर्तृहरि व शूद्रक जैसे बड़े-बड़े पंडित कवि संस्कृत के हैं।

● वैदिक संस्कृत - लौकिक संस्कृत

वैदिकार्यों के व्यवहार की भाषा "वैदिक संस्कृत" है। जिस भाषा का व्यवहार हुआ, वह "लौकिक संस्कृत" है। उदा- महाभारत व रामायण हैं। वैदिक संस्कृत के समय को ई. पू. 1500 से ई.पू. 1000 तक और लौकिक संस्कृत के समय को ई.पू. 1000 से 600 तक भाषा वैज्ञानिकों ने निर्धारित किया। कालांतर में पाली, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं (ई.पू. 600 से ई. सन् 1000) के रूप में परिणत हुई, ऐसा भाषा वैज्ञानिकों ने जान लिया। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के बीच प्रधान भेद यह है कि भाषा में स्वरों का लोप। भारत देश में पूजा-पाठ व कर्मकाण्ड आदि में संस्कृत भाषा का ही उपयोग हो रहा है, लेकिन आज भारत देश में कोई भी संस्कृत भाषा में नहीं बोल रहे हैं। कहा जाता है कि कर्नाटक के एक गाँव में पूरी तरह संस्कृत का ही व्यवहार हो रहा है।

● पाली भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने यह मत व्यक्त किया कि यह पाली भाषा प्राकृत का भेद ही है। 'जॉन बीम्स' (John Beams) ने यह अभिप्राय व्यक्त किया कि ई. पू. 307 के लग-भग 'सिंहल' देश में 'अर्धमागधी' प्राकृत ही "प्राकृत" है। पाली के शब्दों व संस्कृत के शब्दों के बीच निकट संबंध है। गौतम बुद्ध के उपदेश "पाली" भाषा में ही हैं। "त्रिपिटक" भी पाली भाषा में ही हैं। बुद्ध का समय ई.पू. 563 से ई.पू. 483 है। भारत देश में ई.पू. पाँचवीं सदी से तीसरी सदी तक पाली भाषा व्याप्त थी। हीनयान धर्म के अनुयायियों ने यह विचार व्यक्त किया कि "पाली" नामक शब्द के "सीमा" या "सरहद" अर्थ भी हैं। इस भाषा में समूची पदावली दो तिहाई संस्कृतसम हैं और बाकी एक तिहाई संस्कृत भाग हैं।

● प्राकृत

भाषा वैज्ञानिकों का अभिप्राय था कि लौकिक संस्कृत से वर्ण लोप व वर्ण विकारादि से जो भाषा बनी, वह प्राकृत है। ई. पू. 600 से ई. पू. 1000 तक बौद्ध व जैन ग्रंथों, शिलालेखों, व संस्कृत के नाटकों की भाषा प्राकृत थी। इस प्राकृत भाषा के 7 प्रकार हैं: वे हैं, 1. मागधी प्राकृत 2. अवंतिजा प्राकृत 3. प्राच्या प्राकृत 4. शौरसेनी प्राकृत 5. आर्ध मागधी प्राकृत 6. बाह्लीका प्राकृत और 7. दाक्षिणात्य प्राकृत। भिन्न व्यक्तियों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बोली जानेवाली भाषाएँ ही भिन्न प्राकृत भाषाएँ बनीं।

बौद्ध वाड्मय में उपलब्ध त्रिपिटक, बुद्ध की जातक कथाएँ, जैनों के धार्मिक ग्रंथ, अश्वघोष की नाटक भाषा, सेतुबंध, गौडवह प्रबन्ध, कालिदास कृत "अभिज्ञान शाकुंतलम्" आदि नाटकों में प्राकृत भाषा के प्रयोग, वरूचि व लाक्षणिकों के व्याकरणों में प्राकृत भाषा के लक्षण आदि अनेक विषयों के कारण हम प्राकृत भाषा के स्वरूपों व स्वभावों के बारे में जान सकते हैं।

● अपभ्रंश भाषाएँ

प्राकृत भाषा से अपभ्रंश की भाषाएँ उत्पन्न हुई। प्राकृत भाषाएँ ग्रंथस्थ रूप में स्थिर रहकर परिवर्तित न हुए और इस कारण कालान्तर में ग्रांथिक स्तर को प्राप्त कर चुकीं। कुछ प्राकृत भाषाएँ प्रचलन में रहकर ग्रंथस्थ प्राकृतों के भिन्न रूप प्राप्त कर चुकीं। ऐसी अपभ्रष्ट भाषाओं को ही "अपभ्रंश भाषाएँ" कहा गया। इन अपभ्रंश भाषाओं से ही बाद में "नवीनौत्तराह" भाषाओं का उदय हुआ।

● नवीनौत्तराह भाषाएँ

इस अपभ्रंश से नवीनौत्तराह भाषाओं का जन्म हुआ। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, अस्सामी, उड़िया, मराठी, कश्मीरी, कोंकणी, नेपाली, सिंधी आदि भाषाएँ नवीनोत्ताराह भाषाएँ हैं। भारत के उत्तर प्रान्त में ये भाषाएँ

व्यवहृत हैं। इंडो-यूरोपियन भाषा परिवारों में हिद्वार्य भाषाओं का प्रमुख स्थान है।

1. हिन्दी

उत्तरी, मध्य, पूर्वी और पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों को शामिल करने वाला एक भाषाई क्षेत्र है जहां विभिन्न केंद्रीय इंडो-आर्यन भाषाओं को 'हिंदी' शब्द के तहत सम्मिलित किया जाता है (उदाहरण के लिए, भारतीय जनगणना द्वारा) बोली जाने। हिंदी बेल्ट का उपयोग कभी-कभी नौ भारतीय राज्यों को संदर्भित करने के लिए भी किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिंदी है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ और राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली का क्षेत्र। भारत देश में अत्यधिक आबादी द्वारा बोली जानेवाली भाषा हिन्दी है।

कबीर ने ख़डीबोली में सूक्तियाँ लिखीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इनका अंग्रेजी में अनुवाद किया। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, बिहारीलाल, रहीम, घनानंद, विद्यापति, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्यय हरिऔध, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवि वर्मा, नागार्जुन, रांगेय राघव, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, कमलेश्वर आदि प्रमुख हिन्दी रचनाकार हैं।

2. उर्दू

इस भाषा का व्यवहार करनेवाले पूरे भारत देश में हैं। इसका व्यवहार करनेवालों की संख्या 11 करोड़ है। उर्दू भाषा का जन्म सैनिक शिविरों, दुकानों व बाज़ारों में हुआ। इसीलिए कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने इस भाषा को "जनभाषा" के रूप में बताया। 'अल्लाउद्दीन खिल्जी' ने दक्षिण पर धावा बोला। उसके कारण भारत देश में उर्दू (दक्खिनी) का जन्म हुआ। उर्दू भाषा के कवियों में 'इकबाल' का नाम अधिक लिया जा सकता है। इस भाषा के अनेक प्रमुख कवि भी हुए हैं।

3. बंगला

पश्चिम बंगाल व बांग्लादेश में इस भाषा का व्यवहार होता है। इस भाषा का व्यवहार करनेवालों की संख्या 20 करोड़ 20 लाख है। ई.सन् 1000 के लगभग यह भाषा विशेष के रूप में जन्मी। श्री चेतन्य महाप्रभु, बंकिमचन्द्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर व शरतचन्द्र आदि इस भाषा के प्रमुख रचनाकार हैं। सन् 1913 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी "गीतांजलि" नामक अंग्रेजी पुस्तक का बंगला में अनुवाद किया। "गीतांजलि" पर उन्हें 'नोबेल' पुरस्कार भी मिला।

4. पंजाबी

पंजाबी भाषा का व्यवहार करनेवालों की संख्या 10 करोड़ है। इस भाषा का व्यवहार पूरे पंजाब में किया

जाता है। दिल्ली में भी इस भाषा का व्यवहार होता है। 11 वीं सदी में 'सौराष्ट्री' अपभ्रंश से इस भाषा का जन्म हुआ। 13 वीं सदी में लिखे 'बाबा फ़रीद' के श्लोक व पद इस भाषा की प्रथम रचनाएँ हैं। पंजाबी साहित्य में 'गुरुनानक' के युग को 'स्वर्णयुग' के नाम से अभिहित किया जाता है। सूफ़ी संप्रदाय ने पंजाबी कविता को प्रभावित किया। सिख गुरुओं ने जिस 'गुरुमुखी' लिपि का रूप प्रस्तुत किया उसका पंजाबी लिपि से निकट संबंध है।

5. गुजराती

गुजराती भाषा का व्यवहार गुजरात में होता है। इस भाषा का व्यवहार करनेवालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है। इस भाषा का जन्म 'घूर्जर' अपभ्रंश से हुआ। गुजराती भाषा 12 वीं सदी से साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित है। जैन साहित्य का प्रारंभ शुरू में गुजराती भाषा में ही हुआ। इस भाषा के प्रमुख रचनाकारों में 'माणिक्य सुंदर सूरि', 'नरसिंह मेहता' व 'मीराबाई' के नाम लिए जाते हैं।

6. असामी

इस भाषा का व्यवहार असम में किया जाता है। इसका व्यवहार करनेवालों की संख्या 2 करोड़ 30 लाख है। असामी भाषा में 13 वीं सदी से साहित्य मिलता है। इस भाषा में 'रामायण' व 'महाभारत' के अनुवाद हुए हैं। चाय के बागानों के लिए अस्साम प्रसिद्ध है।

7. उड़िया

उड़िया भाषा का व्यवहार 'उड़ीसा' में किया जाता है। 13 वीं सदी से इस भाषा में साहित्य मिलता है। 'सारलदास' ने उड़िया भाषा में 'रामायण' व 'महाभारत' का अनुवाद किया। 15 वीं सदी के चैतन्य व 16 वीं सदी के जयदेव का प्रभाव इस भाषा पर लक्षित होता है। बौद्ध, जैन, शाक्त व वैष्णव संप्रदायों का प्रभाव उड़िया साहित्य पर अधिक दिखाई देता है। उड़िया का प्रभाव कलिंग के प्रान्त पर है। इस भाषा के अनेक शब्द कलिंग प्रान्त में हैं। उदा: बेपि, पैन, कंबारी आदि।

8. मराठी

इस भाषा का व्यवहार 'महाराष्ट्र' में होता है। यह भाषा महाराष्ट्र प्राकृत से उत्पन्न हुई। इस भाषा को बोलनेवालों की संख्या 7 करोड़ है। भाषा वैज्ञानिकों ने मराठी भाषा साहित्य को छः भागों में विभक्त किया।

1. यादव युग (ई. सन् 1189 - 1320), 2. बहमनी युग (ई. सन् 1321 - 1600), 3. मराठा युग (ई.सन् 1601 - 1700), 4. पीश्वा युग (ई.सन् 1701 - 1856), 5. ब्रिटिश युग (ई.सन् 1857-1947), 6. समकालीन युग (ई.सन् 1947 - से अब तक)। मुकुंदराज, ज्ञानदेव नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, कृष्णदयार्णव, श्रीधर व छाँडीकर आदि इसी मराठी के प्रमुख व्यक्ति हैं।

9. कश्मीरी

इस भाषा का व्यवहार जम्मू-कश्मीर में किया जाता है। इसका व्यवहार करनेवालों की संख्या 40 लाख है। भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि इस भाषा का जन्म 10 वीं सदी में अपभ्रंश भाषा से हुआ। इस भाषा पर फारसी का अच्छा प्रभाव दिखता है। कश्मीर में 600 वर्षों तक फ़ारसी भाषा ही राजभाषा के रूप में थी। इसी कारण कश्मीरी भाषा पर फ़ारसी भाषा का अधिक प्रभाव लक्षित होता है।

10. कोंकणी

इस भाषा का व्यवहार करनेवालों की संख्या 40 लाख है। यह मराठी भाषा से निकट संबंध रखती है। इस भाषा का व्यवहार करनेवाले देवनागरी, रोमन, कन्नड़ व मलयालम भाषाओं की लिपियों का उपयोग करते हैं। इस भाषा का व्यवहार 'गोवा' में किया जाता है। इसके साथ मुंबई, केरल व मंगलूर में भी इस भाषा का प्रयोग करते हैं। 'कोंकणी' भाषा बोलनेवालों में अधिकतर ईसाई हैं।

11. नेपाली

नेपाली भाषा का व्यवहार करनेवाले भारत व 'नेपाल' में हैं। "खास प्राकृत" से इस भाषा का जन्म हुआ। इसका व्यवहार करनेवालों की संख्या एक करोड़ 60 लाख है। नेपाली के लेखक संस्कृत भाषा के भी अच्छे रचनाकार हैं। संस्कृत भाषा में रचित रामायण व महाभारत का अनुवाद नेपाली भाषा में किया गया है। ई.सन 18 वीं सदी में 'सांप्रदायिक कविता' का 'प्रादुर्भाव' हुआ। इस भाषा में लोक साहित्य भी उपलब्ध है।

12. सिंधी

इस भाषा का व्यवहार करनेवालों की संख्या एक करोड़ 80 लाख है। सिंधी भाषा का व्यवहार भारत में व्याप्त है। ये किसी एक प्रान्त तक सीमित रहनेवाले नहीं हैं। इस भाषा का व्यवहार करनेवाले कुछ लोग 'देवनागरी लिपि' का उपयोग कर रहे हैं और कुछ लोग 'पेर्सो अरबिक' लिपि का उपयोग करते हैं। इस भाषा में साहित्य ई. सन् 1290-1409 के बीच रहा। 'सीर सदरूद्दीन' इस भाषा में साहित्य सृजन करनेवालों में प्रथम हैं। इस प्रकार "इंडो-आर्यन भाषा परिवार" शाखाओं और उपशाखाओं से युक्त होकर महान वट वृक्ष के रूप में विस्तृत हो गया। इस भाषा परिवार की प्रमुख भाषाएँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, स्पानिश, जर्मन, रूसी, डैनिष, स्वीडन, पर्शियन व पोलिश आदि हैं। यह भाषा परिवार बहुत बड़ा है।

13. अन्य भाषाएँ- ऊपर उल्लिखित भाषाओं के अलावा और भी भाषाएँ हैं।

इंडो आर्यन भाषा परिवार: वर्गीकरण

भाषा वैज्ञानिकों ने 'इंडो-आर्यन भाषा परिवार' को मुख्यतः तीन दशाओं में वर्गीकृत किया है:

I. प्राचीन दशा II. मध्य दशा **III.** आधुनिक दशा

1. प्राचीन दशा

वैदिक संस्कृत भाषा (ई.पू. 2000 से ई.पू. 500) की दशा को भाषा वैज्ञानिक "प्राचीन दशा" मानते हैं। इस वैदिक संस्कृत को केवल एक ही वर्ग के लोग बोलते थे। मुख्यतः वैदिक संस्कृत ब्राह्मणों तक ही सीमित थी।

2. मध्य दशा

कालान्तर में समय के प्रभाव के कारण वैदिक संस्कृत लोगों में घुस गई। अंत में वैदिक संस्कृत में आँचलिक भेद उत्पन्न हुए। धीरे-धीरे ये आँचलिक भाषाएँ अलग भाषाओं के रूप में विकसित हुई। इस प्रकार अलग भाषाओं के रूप में बनी भाषाएँ ही प्राकृत भाषाएँ हैं। इनका व्यवहार जिस प्रान्त में होता था, उनका नाम उस प्रान्त विशेष के रूप में बदल गया। जैसे महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, अवंती, पैशाची आदि।

ई.पू. तीसरी सदी में "पाली" भाषा विशेष प्राकृत के रूप में कुछ समय तक थी। भाषा-वैज्ञानिक ने 'प्राकृत' व 'पाली' भाषाओं को "मध्यार्य भाषाएँ" कहकर पुकारते थे। भारतीय आलंकारिकों में अति प्राचीन रचनाकार भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में इन भाषाओं को 'विभाषाएँ' नाम दिया।

ई. सन्. 600 तक इन भाषाओं को "अपभ्रंश भाषाएँ" (Degraded Languages) के नाम से पुकारते थे। ई.सन्. 1000 तक मध्यार्य दशा प्रचलित थी।

3. आधुनिक दशा

मध्यार्य भाषाओं से आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। ये ही आज की औत्तराहिक भाषाएँ हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुसार आर्य भाषाओं को 6 वर्गों में भाषा वैज्ञानिकों ने वर्गीकृत किया।

आधुनिक दशा

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ
वायव्य वर्ग	दक्षिण वर्ग	प्राग्वर्ग वर्ग	प्राड्मध्यम वर्ग	उत्तर वर्ग	विदेशी वर्ग

अ. वायव्य वर्ग

हिन्दी, लहन्दा, पश्चिमी पंजाबी व कच्ची भाषाएँ इस वर्ग में आती हैं।

आ. दक्षिण वर्ग

दक्षिण वर्ग की प्रमुख भाषा मराठी है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि गोवा व महाराष्ट्र के समुद्रतटीय प्रान्तों में प्रचलित "कोंकणी" भाषा भी दक्षिणी वर्ग की ही भाषा है।

इ. प्राग्वर्ग

उड़िया, असामी, बंगला, बिहारी (मैथिली, मागधी व भोजपुरी) व हल्बी भाषाएँ 'प्राग्वर्ग' के अंतर्गत आती हैं । उड़िया, असामी, व बंगला भाषाओं का उदय "मागधी प्राकृत" से हुआ ।

मैथिली भाषा में 'विद्यपति' का लिखा "भक्तिसाहित्य" है । यह ई. सन् 14 वीं सदी से संबंधित है । 'छोटानागपुर' प्रान्त में प्रचलित 'भोजुपरी' में ही कबीर का साहित्य बना । यह ई. सन् 15 वीं सदी से संबंधित है । प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं में एक भाषा अवधी / कोसली में "रामायण" की रचना हुई । यह ई.सन् 12 वीं सदी से संबंधित है । "हल्बी" का व्यवहार बस्तर प्रान्त में होता है ।

ई. प्राड्.मध्यम वर्ग

इस वर्ग में वचाही, खड़ीबोली, ब्रज, कनौजी, बुंदेली, डोग्री, गुजराती, राजस्थानी (मालवी, मारवाडी, जयपुरी, मेवाती, भेली) आदि भाषाएँ हैं ।

पाली भाषा से 'शौरसेनी' भाषा का जन्म हुआ । भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि शौरसेनी भाषा से गुजराती भाषा का जन्म हुआ ।

'मीरा के पद' ई. सन् 15 वीं सदी में लिखे गए । मीरा के पदों के पहले ही 'डिंगल साहित्य' राजस्थानी भाषा का अंग बन गया । पर राजस्थानी भाषा अपने विशिष्ट भाषातत्व को खोकर हिन्दी के एक आँचलिक रूप में बदल गई । 'खड़ीबोली' दिल्ली के प्रान्त में जन्मी और फिलहाल 'राजभाषा' के रूप में बदल गई ।

उ. उत्तर वर्ग

भाषा वैज्ञानिकों ने इस वर्ग का एक अलग नाम "महारी वर्ग" दिया । इसमें पहाड़ी, गोर्खाली, गढ़वाली व कुमायूनी नामक चार आँचलिक रूप हैं । इस वर्ग में स्थित प्रान्तों के आधार पर ही भाषा वैज्ञानिकों ने उनके नाम दिये ।

ऊ. विदेशी वर्ग

श्रीलंका में बोली जानेवाली "सिंहल भाषा", माल्दीवों में बोली जानेवाली "माल्दीवियन् भाषा" व पूरे यूरोप में सैलानियों की तरह घूमनेवाले 'जिप्सी' लागों के द्वारा बोली जानेवाली भाषा "रोमानी" भाषा इस वर्ग में आती हैं । इस विदेश वर्ग में जो भाषा किसी भी वर्ग में नहीं आती, "वह दर्दिक" नामक उप परिवार की भाषा "कश्मीरी" है । यह कश्मीरी भाषा साहित्यक भाषा के रूप में ई. सन् 13 वीं सदी में परिवर्तित हुई । इस भाषा का व्यवहार आजकल कश्मीर की घाटी में होता है । कश्मीर राज्य में ही 'दस्टो', 'बलूची', 'बरूषाकी' जैसी आर्य भाषा की विशेषताएँ प्रचलित हैं ।

पूरे भारत में प्रचलित अधिक प्रचार की और एक आर्य भाषा उर्दू है । सामाजिक व राजनीतिक कारणों से इस भाषा की वृद्धि हुई । वास्तव में भाषा का उदय मुसलमान शासकों के शासन के समय, विशेषकर सैनिक शिविरों में

हुआ है। उर्दू भाषा में ई. सन् 15 सदी तक साहित्य भी बना। इस रूप को "दक्खिनी" कहते हैं। उत्तर भारत प्रान्त में 18 वीं सदी में साहित्य बना। ब्रिटिश शासकों के शासनकाल में हिन्दी भाषा की शिक्षा की अपेक्षा उर्दू भाषा की शिक्षा पर अधिक प्रमुखता दी गयी। इन दोनों रूपों को मिलाकर "हिन्दुस्तानी" कहकर बुलाते हैं।

II. द्रविड़ भाषा परिवार: (Dravidian Family of Languages)

द्रविड़ भाषा परिवार भारतीय भाषा परिवारों में ही नहीं, बल्कि विश्व के भाषा परिवारों में भी बहुत बड़ा परिवार है। भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि इस द्रविड़ भाषा परिवार में 24 करोड़ लोग इन भाषाओं का व्यवहार करते हैं। खासकर पूरे दक्षिण भारत देश में ये भाषाएँ व्याप्त हैं। **"द्रविड़ भाषा परिवार"** लगभग 3000 वर्ष के इतिहास से युक्त है। भाषा वैज्ञानिकों ने द्रविड़ भाषाओं को उत्तर, दक्षिण व मध्य नामक तीन परिवारों में विभाजित किया। ये भाषाएँ, कुल 23 हैं। इन तीनों भाषा परिवारों में फिर अनेक अंतर्भाग मिलते हैं। "द्रविड़ भाषाएँ व्यवहर्ता व उनके प्रान्त" नामक विषय के अंतर्गत द्रविड़ भाषाओं के बारे में और विवरणों के साथ व विस्तारपूर्वक चर्चा हुई, जिसे हम देख सकते हैं।

III. एस्ट्रो - एशियाटिक भाषा परिवार: (Astro-Asiatic Family of Language)

यह नाम भौगोलिक वर्गीकरण के आधार पर रखा गया है। एक ओर से 'आस्ट्रेलिया' खण्ड से लेकर दूसरी ओर 'एशिया' में भारत तक विस्तृत रूप में प्रचलित भाषाओं को "एस्ट्रोएशियाटिक भाषाएँ" कहते हैं।

'नीग्रोइट' (नीग्रिटो) 'कोलेरियन' (मुंडेरियन) लोगों के द्वारा ये भाषाएँ भारत में लायी गयीं। पुराने जमाने में इन भाषाओं का व्यवहार करनेवालों को "निषाद" कहकर पुकारते थे। इनके बाद जो आए वे "मंगोलाइड" जाति के थे। इनको हमारे प्राचीन लोग "किरात" कहकर पुकारते थे।

भारत देश में बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम राज्यों में व अंडमान व निकोबार द्वीपों में इस परिवार से संबंधित भाषाएँ व्यवहार में थीं।

एस्ट्रो एशियाटिक परिवार की प्रमुख भाषाएँ

इस परिवार की प्रधान भाषाएँ निम्न प्रकार की हैं।

1. संथाली 2. मुंडारी 3. हू 4. सवरा 5. कोर्क 6. ज्वांग 7. काशी 8. निकोबारीस।

एस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार का वर्गीकरण :

इस परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण भाषा वैज्ञानिकों ने तीन उप परिवारों के रूप में किया, वे ये हैं:

I.कोल/कोलेरियन/मुंडा भाषा परिवार **II** निकोबारउप परिवार III.मानख़मेर उप परिवार

1. कोल / कोलेरियन / मुंडा उप परिवार

कोलेरियन/मुंडेरियन भाषा परिवार से संबंधित लोग "अस्ट्रलायिड्स" हैं। इन्हीं को आरंभ में 'निषाद' कहकर पुकारते थे। बाद में 'निषाद' शब्द विस्तृत व्यवहारवाची बन गया। इस उप परिवार की प्रधान भाषा "संथाली" है। बिहार राज्य के "छोटा नागपुर" व "संथाल परगनों में अधिकतर और "उड़ीसा" व 'असम' में कम मात्रा में 'संथाली' हैं। "मुंडारी" भाषा का व्यवहार दक्षिणी बिहार व अस्साम के जनजातीय व जंगली प्रान्तों में है। इसी प्रान्त में 'खरिया' व "भूमिज" भाषाएँ व्याप्ति में हैं। मध्यप्रदेश के 'बेरार' में 'कोर्कु' भाषा बोलनेवाले लोग हैं। उड़ीसा में "गदब" भाषा बोलनेवाले हैं।

'सवरा' भाषा

उड़ीसा व आन्ध्र प्रदेश के उत्तरी प्रान्तों में 'सोअर' / 'सवरा' भाषा का व्यवहार करनेवाले लोग हैं। इन लोगों की भाषाओं में मूर्त वस्तुएँ (Concrete objects) मुख्य तौर पर जानवरों व वृक्षों से संबंधित शब्द अधिक हैं। अमूर्त भावों का विवरण करनेवाले शब्द (Abstract objects) कम हैं। 'गिडुगु वेंकट

राममूर्ति पंतुलु' जी ने "सवरा" भाषा का व्याकरण व कोश बनाये। इस भाषा पर 'गिडुगु' ने अधिक श्रम किया। संस्कृत का "लांगला" और तेलुगु भाषा का "नागलि" शब्द इसी भाषा से उधार (borrowed) लिए गए हैं। कलिंग व आन्ध्र में प्रयोग में आनेवाला "गेड्डा" (सरिता / नदी) का शब्द भी इसी भाषा का है। इस 'सवरा' भाषा में मौखिक साहित्य (Oral Literature) अधिक है।

2. निकोबार उप परिवार

निकोबार द्वीपों के आदिवासियों की भाषा 'निकोबारीस' है। यह नाम भाषा वैज्ञानिकों का दिया हुआ है। हाल ही में इस भाषा के लक्षणों को पहचान लिया गया।

3. मानख्मेर उप परिवार

पूवोत्तर भारत में असम के खासी व जयंतिया पहाड़ी पंक्तियों में "खासी" इस परिवार की प्रधान भाषा है। सुदूर 'प्राच्य' देशों में इस परिवार की भाषाओं का जो व्यवहार है, उनमें "मानख्मेर" परिवार की भाषाएँ हैं। भाषा वैज्ञानिकों ने हाल में ही पता लगाया कि इनका "खांसी" व "निकोबार" भाषाओं से निकट संबंध है।

आचार्य "बारो" का अभिप्राय है कि गंगा, तांबूल कदली, वाल, कंबल, आदि शब्द इन भाषाओं से संस्कृत में मिल गए हैं। भाषा वैज्ञानिकों ने सोदाहरण निरूपित किया कि ऊपर बताए गए शब्दों के अलावा इस भाषा परिवार के अनेक शब्द संस्कृत में मिल गए हैं।

4. टिबेटो - बर्मन भाषा परिवार: (Tibetan Barman family of languages)

यह परिवार एशिया खण्ड के चीन, टिबेट, बर्मा, थॉयलैंड व भारत देश में व्याप्त है। टिबेट भाषा व बर्मा की भाषाओं का प्रतिनिधित्व होने के कारण इस परिवार का वह नाम पड़ा।

हमारे देश में प्रवास में आए "मंगोलायिड" जातियों के लोग हिमालय के पर्वत प्रान्तों व पूर्वोत्तर प्रान्तों में बस गए और वे ही 'टिबेटो-बर्मन' उप परिवार से संबंधित "सीनो", "टिबेटन" भाषाओं को प्रयोग में लाए। कश्मीर से लेकर पूर्वोत्तर राज्यों तक इस परिवार की भाषाएँ व्यवहार में हैं। इस परिवार की अधिकतर भाषाएँ अनागरिक भाषाएँ हैं। इसका मतलब है कि वे साहित्यरहित भाषाएँ हैं।

टिबेटो-बर्मन भाषा परिवार - प्रधान भाषाएँ

इस परिवार की प्रधान भाषाएँ निम्नलिखित हैं-

1. बोडो 6. नेवारी

2. मणिपुरी 7. लेप्चा

3. लुषाई 8. अस्मक

4. गारो 9. मिकिर

5. भूतिमा

टिबोटो-बर्मन भाषा परिवार - वर्ग

इन भाषाओं के दो वर्ग हैं -

अ. सार्वनामिक भाषाएँ (Pronominalised languages)

आ. असार्वनामिक भाषाएँ (Non-Pronominalised languages)

अ. सार्वनामिक भाषाएँ (Pronominalised languages)

पश्चिम बंगाल की उत्तरी सीमा में डार्जीलिंग नगर के आसपास इस वर्ग की भाषा " लेप्चा" भाषा व्यवहार में है। यह नागरिक भाषा है।

आ. असार्वनामिक भाषाएँ (Non Pronominalised languages)

नेपाल के सीमाप्रान्त में व्यवहृत "नेवारी भाषा" इस वर्ग की प्रमुख भाषा है। बौद्ध साहित्य का विकास इसी भाषा में हुआ। 19 वीं सदी से इस भाषा में विस्तारपूर्वक साहित्य सृजन हुआ। राजनीतिक प्रोत्साहन प्राप्त होने के कारण इस "नेवारी" भाषा को फिलहाल विशेष महत्व मिला। इन दोनों वर्गों की भाषाओं को मिलाकर "हिमालयन्

भाषाएँ" कहते हैं।

टिबेटो-बर्मन भाषा परिवार : वर्गीकरण

भारत में स्थित "टिबेटो – बर्मन" शाखा का वर्गीकरण भाषा वैज्ञानिकों ने चार वर्गों में किया।

टिबेटो-बर्मन शाखा

I	II	III	IV
उत्तर असम वर्ग	असम बर्मीस वर्ग	कूकिचिन् वर्ग	टिबेटन वर्ग

1. उत्तर असम वर्ग

आका, अबोर, मिरी, मिष्मी आदि भाषाएँ इस वर्ग की हैं।

2. असम-बर्मीस वर्ग

बोड़ो, नागा, कछारी, टिप्रास (मुंग्स) भाषाएँ इस वर्ग की हैं। बोड़ो भाषा का व्यवहार 'ब्रम्हपुत्र' की घाटी में, 'कगारी' भाषा का व्यवहार असम के 'कछारी पर्वत' प्रान्तों में है। 'नागा राज्य' में, व्यवहार में स्थित "नागा" भाषा में अनेक आंचलिक भाषा - रूप प्रचलन में हैं। उनमें 'अंगामी', 'सीमा', 'रेग्मा', व 'आओ' आदि प्रमुख हैं।

3. कूकि - चिन वर्ग

इस वर्ग की भाषाओं में 'मेयिधेम' (मणिपुरी) भाषा प्रमुख है। 'मणिपुर राज्य' में इस भाषा का व्यवहार है। 15 वीं सदी में इस भाषा की लिपि बनी। इस भाषा में मुख्यतः 18 वीं सदी से वैष्णव साहित्य का सृजन हुआ। बर्मा की सीमा में व्यवहृत "लुषायी मिकिर" भाषा इसी परिवार की है। इस भाषा लोक साहित्य ने स्थान पाया।

4. टिबेटन वर्ग

टिबेट की सीमा में "लद्दाख" में जनव्यवहार में स्थित 'लद्दाखी' भाषा, सिक्किम में व्यवहार में स्थित 'देन्जोंग के' भाषा, व भूटान में व्यवहृत "ल्हो – के" भाषा इस परिवार की हैं। इन भाषाओं पर टिबेटन भाषा का अधिक प्रभाव दिखता है। इन भाषाओं का कोई लिखित साहित्य या लिपि नहीं है। अर्थात ये अनागरिक भाषाएँ हैं।

भारतीय भाषा परिवारों में संस्कृत, हिन्दी, मराठी आदि भाषाओं के लिए "नागरी" या "देवनागरी" लिपि व्यवहार में है। उर्दू, कश्मीरी व सिन्धी भाषाओं के लिए "अरबी लिपि" (Arabic Script) व्यवहार में है। द्रविड़ भाषाएँ तेलुगु, तमिल, कन्नड़ व मलयालम आदि भाषाओं के लिए अलग- अलग लिपियाँ हैं।

भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि इन सारी भाषाओं का जन्म "ब्राह्मी" लिपि से हुआ। ई.पू. 300 के समय अशोक की धर्मलिपि का आधार "ब्रांह्मी" लिपि ही है। चाहे कुछ भी हो, ऐतिहासिक आधार प्रमाणित करते हैं कि इन

सारी भाषाओं का आधार "ब्राह्मी लिपि" ही है। पश्चिमी तट की भाषाओं में लगभग 14 वीं सदी से "मोडी लिपि" नामक एक "जंजीर-नुमा लिपि" व्यवहार में आयी है। यह लिपि केवल व्यापार क्षेत्र में स्थिर हुई। पर कालान्तर में इस लिपि का प्राबल्य नष्ट हुआ।

संस्कृत भाषा में आरंभ में एक लिपिरहित भाषा ही थी। आरंभ में किसी भी भाषा की लिपि नहीं होती। कालान्तर में भाषा-वैज्ञानिक उन-उन भाषाओं की लिपियाँ तैयार करते हैं। बाद में उस लिपि का सब लोग अनुकरण करते हैं। उसका अनुकरण कर उसका आदर करते हैं। इस बात को स्वीकार किए बिना नहीं रहा जाता कि संस्कृत भाषा बहुत समय तक लिपि के बिना मौखिक स्तर पर ही जीवित रही। ई.पू. 10 वीं सदी के बाद ही "संस्कृत लिपि" बनी है, ऐसा भाषा वैज्ञानिकों का मत है। यद्यपि संस्कृत भाषा के लिए भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त है, फिर भी आज यह केवल थोड़े-से लोगों के द्वारा मात्र व्यवहृत है।

भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त में ई. पू. 3, 4 सदियों में "खरोष्ठी" लिपि का व्यवहार था। यह भी कालान्तर में नष्ट हुई। 'अरबी लिपि' के समान इसका भी व्यवहार दायी ओर से बायी ओर किया जाता था। इसका भी कालान्तर में विनाश हुआ। भाषा-वैज्ञानिक फिलहाल इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि अनागरिक भाषाओं में कुछ भाषाओं के लिए "रोमन" लिपि या उन- उन प्रान्तों की विकसित भाषाओं की लिपियों का (उदाहरण के लिए दक्षिण द्रविड़ भाषा "तुळु" के लिए कन्नड़ लिपि का प्रयोग, तथा मध्य द्रविड़ भाषा "गोंडि" के लिए तेलुगु भाषा की लिपि का प्रयोग करना) प्रयोग कर उन भाषाओं व व्यवहर्त्ताओं को नागरिक स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न भी हो रहा है।

1.5. सारांश

भारतीय भाषा परिवारों के बारे में बताया गया, उनमें बहुत बड़े परिवार दो हैं। एक तो 'इंडो-आर्यन भाषा परिवार' है और दूसरा 'द्रविड़ भाषा परिवार' है। इंडो-आर्यन भाषा परिवार की भाषाओं को आर्य भाषाएँ व द्रविड़ भाषा परिवार की भाषाओं को द्रविड़ भाषाएँ कह कर उनका व्यवहार होता है। भावी छात्र और शोधकर्ताओं के लिए इस बात की ओर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है कि भारतीय भाषाओं से संबंधित शोधकार्य भाषापरक व साहित्यपरक दृष्टि से गहराई से विवरणात्मक ढंग से व विस्तार के साथ करें। नागरिक भाषाओं के साथ-साथ अनागरिक भाषाओं पर भी जब भाषा वैज्ञानिक आवश्यक परिश्रम से युक्त प्रयत्न करें तो उन भाषाओं को बड़ा लाभ पहुँचेगा। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि उच्चस्तरीय शोध कार्यों से भारतीय भाषाओं की संख्या के बढ़ने की संभावना है।

1.6. बोध प्रश्न

1. द्रविड़ भाषा परिवारों के बारे में लिखिए।
2. भारतीय भाषाएँ और भाषाओं के वर्गीकरण के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

1.7. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

➢ सूचना

इस इकाई में दी गयी तालिकाएँ, तेलुगु भाषा का इतिहास-संपादक- आचार्य वेलमला सिम्मन्ना, हिन्दी रूपांतर-प्रो. एस. ए. सूर्यनारायण वर्मा पुस्तक से संपन्न हुआ है।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी

2. तेलुगु भाषा का इतिहास

2.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम भारतीय भाषाएँ और वर्गीकरण के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप लोग आन्ध्र शब्द की व्युत्पत्ति के साथ-साथ तेलुगु शब्द की व्युत्पत्ति कब और कैसे हुआ है तेलुगु भाषा कैसे बना है इसकी जानकारी भी आपको मिलेगा उसके साथ-साथ तेलुगु भाषा का इतिहास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना ही इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

रूप रेखा

2.1. प्रस्तावना

2.2. आन्ध्र शब्द - प्राचीनता, व्युत्पत्ति व इतिहास

2.3. तेलुगु लिपि का विकास

2.4. तेलुगु भाषा - युगों का विभाजन

2.5. सारांश

2.6. बोध प्रश्न

2.7. सहायक ग्रंथ

2.1. प्रस्तावना

इस इकाई में सबसे पहले आन्ध्र शब्द की प्राचीनता, व्युत्पत्ति व इतिहास से परिचित होते हुए आन्ध्र शब्द का विवरण, व्युत्पत्ति और अनुशीलन के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। आन्ध्र शब्द का अनुशीलन के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे। आन्ध्र शब्द को जातिवाचक, देशवाचक और भाषावाचक के रूप में केस स्तर पर कैसे प्रयोग किया गया है इसकी भी जानकारी प्राप्त करते हुए तेलुगु शब्द की व्युत्पत्ति और तेलुगु लिपि के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे
।

2.2. आन्ध्र शब्द - प्राचीनता, व्युत्पत्ति व इतिहास

यहां पर हम आन्ध्र शब्द का प्राचीनता क्या है और शब्द का व्युत्पत्ति उसका इतिहास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

1. आन्ध्र शब्द- विवरण

2. आन्ध्र शब्द- व्युत्पत्ति

3. अंध शब्द- आन्ध्र शब्द

4. आन्ध्र शब्द- अनुशीलन

(अ) जातिवाचक के रूप में आन्ध्र शब्द

(आ) देशवाचक के रूप में आन्ध्र शब्द

(इ) भाषावाचक के रूप में आन्ध्र शब्द

1. 'आन्ध्र' शब्द -विवरण

'आन्ध्र प्रदेश' राज्य के लिए 'आन्ध्र देश', 'तेलुगु देश', 'तेलुगुनाडु' व 'तेनुगु देश' आदि नाम प्रचलन में थे । आन्ध्र प्रदेश के लोग जिस भाषा को बोलते हैं, उसे तेलुगु कहते हैं। तेलुगु भाषा को अनेक नामों से पुकारा जाता था। पुर्तगाल के लोग तेलुगु भाषा-भाषियों को 'जेंतियो' (Gentio) और तेलुगु भाषा को 'जेंतू' (Gentoo) कहकर पुकारते थे । तमिल व कन्नड़ भाषाओं के प्राचीन ग्रंथों व शिलालेखों में वडुगा, वडग, तेलिंग, तेलुगु जैसे कई नाम दीखते हैं। कुछ विदेशी, तेलुगुवालों को "तेलुगूस्" कहते थे। लेकिन पुराने जमाने से तेलुगु भाषा के लिए पर्याय शब्दों के रूप में आन्ध्रम्, तेलुगु, तेनुगु जैसे शब्द प्रयोग में थे। इन तीनों शब्दों को आज समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं। इनमें से 'आन्ध्र' शब्द संस्कृत का शब्द है। तेलुगु व तेनुगु शब्द ठेठ तेलुगु के शब्द हैं। इन तीनों में बहुत प्राचीन शब्द आन्ध्र है।

प्राचीन काल से आज तक तेलुगु भाषी जिस प्रान्त में रहा करते थे, वह आन्ध्र प्रान्त है। 1, अक्तूबर सन् 1953 को आन्ध्र राज्य बना। 1 नवंबर, 1956 में आन्ध्र प्रदेश राज्य का आविर्भाव हुआ। आन्ध्र प्रदेश राज्य का क्षेत्रफल लगभग 2,77,000 वर्ग किलोमीटर है आबादी लगभग 9 करोड़ है। आबादी के अनुसार तेलुगु भाषा का भारतीय भाषाओं में दूसरा स्थान है। हिन्दी भाषा का प्रथम स्थान है। आन्ध्र प्रदेश 23 जिलों का सुविशाल राज्य है।

आन्ध्र राज्य की पूर्वोत्तर दिशा में उड़ीसा, उत्तर में मध्य प्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र व कर्नाटक, दक्षिण में तमिलनाडु तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी सीमाओं के रूप में हैं।

2. 'आन्ध्र' शब्द की व्युत्पत्ति

श्री वड्लमूड़ि गोपालकृष्णय्या जी ने आन्ध्र शब्द की प्रधानत: तीन व्युत्पत्तियाँ दीं। वे हैं, 1. अंध- अंधकार को, र- नाश करनेवाला या हटानेवाला, 2. अंध- पानी पर, र- गमन करनेवाला, अर्थात् जलयान करनेवाला और 3. अंध अन्न, र: -हाथ में रखनेवाला (अन्नदाता) (समूल श्रीमदान्ध्र ऋग्वेद संहिता, प्रथम खण्ड, पृ. 46) इन व्युत्पत्तियों से जो निष्कर्ष निकला, वह यह है कि 'अंध' धातु के बाद 'रन्' प्रत्यय के जोड़ने से (अंध - रन्) 'आन्ध्र' शब्द बना। 'अंध' धातु का गहराई से अनुशीलन करने से 'अंधा' व 'अंधकार' नामक दो शब्द प्रमुखतः दिखाई देते हैं। इन दोनों में 'अंधकार' नामक शब्द यहाँ उचित लगता है। आर्यों ने प्रकट किया कि दक्षिणापथ में बसनेवाले एक जातिवाले ही 'आन्ध्र' हैं। आर्यावर्त में रहनेवाले आर्यो को दक्षिणापथ के बारे में या उस प्रान्त के निवासियों के बारे में ठीक-ठीक जानकारी नहीं थी। हमें यह बात भूलना नहीं चाहिए कि भारत में जिस भूभाग से वे परिचित थे, वह बहुत कम ही था।

"आर्यावर्तः पुण्य भूमिः, मध्यं विन्ध्य हिमालयोः" (अमरकोश-2. भूमि. 8) 'अमर कोश' में अमरसिंह ने बताया कि विन्ध्य व हिमालयों के बीच के प्रदेश को आर्यावर्त व पुण्यभूमि के नामों से व्यवहृत करते हैं। 'अमरकोश' के व्याख्याता श्री लिंगाभट्ट ने भी इसी बात का प्रबल समर्धन किया।

"आर्याधार्मिका वर्तन्ते अस्मिन्नित्यार्यावर्तः"

दक्षिण भारत के बारे में पूरी जानकारी न रखनेवाले आर्यों ने दक्षिण के प्रान्त को अंध देश व वहाँ के लोगों को अज्ञानियों व अबोधों के रूप में समझा। इसीलिए आर्यों ने दक्षिणपथ में रहनेवालों को "आन्ध्र" बताया। व्युत्पत्तिपरक अनुशीलन के आधार पर अन्ध्र या आन्ध्र दोनों गौरव सूचक शब्द नहीं हैं और एक बात यह है कि वे दोनों संस्कृत के हैं। हमें यह जानना चाहिए कि इन दोनों शब्दों के लिए अर्थ गौरव प्राप्त करने में बहुत समय लगा।

3. 'अंध' शब्द - आंध्र शब्द

अधिकतर भाषावैज्ञानिकों का मत है कि उच्चारण में कालान्तर से 'अंध' शब्द ही 'आंध्र' शब्द के रूप में परिवर्तित हुआ।

4. 'आंध्र' शब्द का अनुशीलन

'आंध्र शब्द' उन-उन कालों में जातिपरक, देशपरक व भाषा-परक रूप में व्यवहृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में 'आंध्र' शब्द जातिपरक व देशपरक रूप में बहुत प्राचीन है। आंध्र शब्द के पर्यायवाची शब्द हैं, आन्ध्र (आन्थ) अंधक व आंधक।

(I). जातिवाचक के रूप में 'आंध्र' शब्द

1. आन्ध्र शब्द पहली बार जातिवाचक के रूप ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण (ई.पू.800-600) में शुनश्शेफ वृत्तांत में दिखाई देता है। सभी ब्राह्मण ग्रंथों में अतिप्राचीन है 'ऐतरेय ब्राह्मण'। इसमें अनेक उपाख्यान हैं। इनमें सुप्रसिद्ध है 'शुनश्शेफोख्यान' (7-13-18) इस उपाख्यान की व्याख्या सायणाचार्य ने लिखी।

"ऐतरेथ ब्राह्मण" में शुनश्शेफ वृत्तांत में आन्ध्रों का उल्लेख आया है। खण्ड-7, अध्याय-13 उप खण्ड- 18

विश्वामित्र के सौ पुत्र थे। एक दिन विश्वामित्र शुनश्शेफ नामक एक बालक को ले आया और अपने पुत्रों से कहा कि इसे तुम अपने बड़े भाई के रूप में स्वीकार करो। उनके पचास पुत्रों ने शुनश्शेफ को अपने बड़े भाई के रूप में स्वीकार करने से इनकार किया। तब विश्वामित्र ने उन बेटों को शाप दिया कि तुम सब अनार्य आन्ध्रों, पुण्ड्र, पुळिंद, शबर व मूतिबा जातियों में मिल जाओ। ऐतरेय ब्राह्मण के शुनश्शेफ वृत्तांत में आन्ध्रों का उल्लेख हुआ है।

इस प्रकार वे आर्य समाज से निष्कासित होकर अनार्य जातियों में मिल गये। इन पाँचों अनार्य जातियों के लोग द्रविड़ जातिवालों के रूप में पहचाने गये होंगे, ऐसा समझा जाता है। भाषा-वैज्ञानिकों का मत है कि अनार्य द्रविड़ों आंध्र भी एक जातिवाले हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में जो कथा है, उसके अनुसार तो हमारी आंध्र जाति आर्य और अनार्य जातियों का मिश्रण दीखती है। यह वृत्तान्त हमें बताता है कि ऐतरेय ब्राह्मणों के काल तक आर्य और अनार्य जातियाँ मिल चुकी हैं। इससे आंध्रों की प्राचीनता भी मालूम होती है।

2. व्यास मुनि के "महाभारत" में पाँच स्थानों पर आंध्रों का उल्लेख मिलता है।

(i). 'सभापर्व' में सहदेव की दक्षिण दिग्वजय के संदर्भ में (46, 47 श्लोक. दिग्विजय पर्वणि 2-28) भण्डारकर 72, 73 श्लोक. 31. अ. स. प. वाविळळ) उसमें बताया गया है कि सहदेव ने पौंड्रों, द्रविड़ों, केरलियों, आंध्रों, तालवनों, कलिंगों, उष्ट्र कर्णिकों, आटविकों व यवनों को हराया।

ii. 'अरण्य पर्व' में जब मार्कण्डेय धर्मराज से कलियुग के धर्मों के बारे में बता रहा था, उस संदर्भ में (35 श्लो. 188. अ. अर. प. वाविळ्ळ) (35 श्लो. 188. अ. अर. प. भण्डार्कर)

इसमें आंध्रों, शकों, पुळिंदों, यवनों, कांभोजों, और्णिकों, शूद्रों और अभीरों को पापी बताया गया है।

iii. भारत देश के नदी-देश- जनपदों के नाम जब संजय धृतराष्ट्र को सुना रहा था, उस संदर्भ में (56, 57, श्लो. 10. अ. भी. प. भण्डारकर)

इसमें यह बताया गया है कि दक्षिण में औष्ट्रों, पुंड्रों, ससों, आंध्रों, पार्वतीयों, द्रविड़ों, केरलियों, प्राच्यों, भूषिकों, वनवासियों, उन्नतकुलों, महिषकुलों व मूषकों के जनपद थे।

iv. "कर्ण पर्व" में पांड्यवध के संदर्भ में (श्लो. 20. अ.क.प.)

इसमें यह जिक्र है कि पांड्य राजा ने कौरव सेना के पुळिंदों, खसों, बाह्लीकों, निषादों, आंध्रकों, कुतलों, दाक्षिणत्यों व भोजों को मार डाला।

v. "अश्वमेधक पर्व" में अर्जुन की दिग्विजय यात्रा के संदर्भ में, (10, 11, श्लो. 83. अ.क.प.)

इसमें बताया गया है कि अश्वमेधयाग के संदर्भ में आंध्रों, विड़ों, औद्रों, महिषिकुलों व कोलगिरेयों के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ।

3. 'संस्कृत भागवत' में शुक ने हरि की स्तुति करते हुए इस बात का वर्णन किया कि किरात, आंध्र, पुळिंद आदि जातियों के लोगों ने अपने-अपने पापों से मुक्ति पाने के लिए "हरि" का आश्रय लिया। (भाग द्वि. स्कं, अध्या. 14 श्लो. 18)

4. मनु ने अपनी 'मनुस्मृति' में यह बताया कि कारावर स्त्री व वैदेह से उत्पन्न आंध्र शिकार करके जीवन बिताते थे। ('मनुस्मृति' अध्या. 10. श्लो. 16)

5. भरत मुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में (ई. सन् पहली शती में) पात्रोचित भाषा के बारे में चर्चा करते हुए इस बात का निषेध किया कि बर्बर, किरात, आंध्र व दमिल जातियों के लोग शौरसेनी जैसी प्राकृत भाषाओं का उपयोग नहीं कर सकते। यहाँ पर आंध्र शब्द जातिवाचक के रूप में दीखता है।

6. वायु, ब्रह्मांड, व मत्स्य पुराणों में आंध्रों का उल्लेख है। "वायुपुराण" में आंध्र भृत्यों के नाम व उनके शासनकाल के बारे में विस्तार के साथ दिया गया है। शातवाहन राजाओं को ही आंध्र भृत्य कहते हैं। शातवाहनों ने ई. पू. 2वीं शती में साम्राज्य की स्थापना कर 400 वर्ष तक महाराष्ट्र व आंध्र देशों पर शासन किया। (वायु पुराण. अ.45, श्लो. 126, ब्र. पु. प्रसा. अ. 16. श्लो. 55-59)

7. 'हरिवंशम्' में कंस के दरबार में श्रीकृष्ण पर चाणूर नामक आंध्र मल्ल को उकसाने की बात बतायी गयी।

8. ई. सन् 9वीं शती में उद्योतन ने अपनी 'कुवलयमाला' नामक प्राकृत ग्रंथ में इस बात का वर्णन किया कि आंध्र बड़े सुंदर हैं और आहार-विहार प्रिय हैं।

9. ई. पू. 300 के लगभग मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार का संदर्शन करनेवाले ग्रीक राजदूत मेगस्थनीस (Megasthanes) ने अपने ग्रंथ ग्रीक भाषा में 'राइवोयिका' (Raivoika) 'इंडिका' (Indica) में यह बताया कि मौर्यों

के बाद आंध्रों का नाम उल्लेखनीय है, जिनके पास एक लाख सैनिक, दो हज़ार अश्वबल तथा एक हज़ार हाथियों सहित चतुरंग सेना है।

(अ). आंध्र

1. ई.पू. तीसरी शती में अशोक के द्वारा लगवाये 13 वीं धर्माशिला के शिलालेख में यह बताया गया कि आन्ध्र वासी अशोक के साम्राज्य के अधीन थे व उसके धर्मोपदेशों का अनुसरण करते थे।

(आ) अंधर

प्लीनी नामक प्रमुख यूनानी इतिहासकार ने 'अंधर' जातिवालों का वर्णन किया और उनके गुणों व वैभवों की प्रशंसा की। उसने यह भी बताया कि उनके पास एक लाख सैनिक, दो हज़ार अश्वदल, एक हज़ार हाथी व 80 दुर्गों से युक्त नगर है।

(इ) अंधक

1. "महाभारत" के आदि तथा अरण्य पर्वों में अंधकों का प्रस्ताव है। द्रौपदी के स्वयंवर में भाग लेनेवालों में अंधक भी थे। (आदि. प. अ. 186, श्लो. 8)

2. "भागवत" में इस बात का उल्लेख है कि यदु, वृष्णि, भोज व कुकरों के साथ 'अंधक' भी यादवों की एक जाति थे और वे द्वारका नगर के संरक्षक थे। (भाग. अध्याय 11, श्लो. 11)

3. मत्स्य पुराण में यह उल्लेख है कि अंधकासुर के संततिवाले ही अंधक हैं। (मत्स्य पुराण 179)

4. बौद्ध धर्म के ग्रंथ - त्रिपिटकों व उनके अंतर्गत आनेवाली जातक कथाओं में अंधकों का उल्लेख है।

5. जैन धर्म के ग्रंथों में भी अंधकों का उल्लेख मिलता है।

6. 'अंध' नामक एक अनार्य जातिवाले अब भी बिहार प्रान्त में हैं।

(ई) आंध्रक

1. व्यास कृत "भारत" में अरण्य पर्व में राजसूय याग के समय युधिष्ठिर की सेवा करने आए हुए राजाओं में पाण्ड्य, ओड्र, चोळ व द्रविड़ों के साथ अंधक भी थे, इस की श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को याद दिलायी। (महाभारत. अ. प. अध्या. 51. श्लोक. 22)

2. "महाभारत" के कर्ण पर्व में इस बात का उल्लेख है कि आंध्रक, पुळिंद व किरातादि म्लेच्छ जातिवालों ने कैरवों के पक्ष में युद्ध किया और वे पराक्रमी थे। (भा. क. प. अध्या. 73, श्लो. 20)

3. "महाभारत" के शांतिपर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को सर्वभूतोत्पत्ति के बारे में बताते हुए यह कहा कि दक्षिणापथ में जन्मे पुळिंद, शबर आदि जातियों में आंध्रक भी एक है। (महाभारत. शां. प. अध्या. 207श्लो. 42)

मोटे तौर पर हमें यह देखना चाहिए कि आंध्र, अंधक व अंध्रक जैसे शब्द एक जातिवाचक शब्द हैं।

उपर्युक्त अनुशीलन के निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन वाड्मय व शिलालेखों में 'आंध्र' नामक शब्द पहले जातिवाचक के रूप में दीखता है। ग्रंथस्थ आधारों की अपेक्षा शिलालेखों के आधार प्रबल हैं।

इसलिए अशोक के शासनकाल के शिलालेखों को हम परम प्रामाणिक मान सकते हैं।

II. देशवाचक के रूप में आंध्र शब्द

जिस प्रान्त में आंध्रवासी रहते हैं, उसे "आंध्र देश" कहते हैं। आंध्र देश नामक समास के साथ "अंधापथ", "अंधरट्टी", "आंध्रपथम्", "आंध्र मंडल व "आंध्र विषयम्" आदि देशवाचक दीख पड़ते हैं।

(अ). आंध्रदेश

1. "वाल्मीकि रामायण" में 'किष्किंधकाण्ड' में सुग्रीव ने वानरों को दक्षिण दिशा की ओर सीता के अन्वेषण के लिए भेजते समय जिन राज्यों में खोजने की बात कही, उनमें आंध्र, पुण्ड्र, चोळ व पाण्ड्य देशों का उल्लेख किया। यहाँ पर आंध्रदेश का भाव आंध्र जाति द्वारा शासित देश का निकलता है। (6-13 श्लो. 41 स. कि. काण्ड)

2. महाभारत के सभा पर्व में दक्षिण दिग्विजय की यात्रा के संदर्भ में सहदेव ने जिन राज्यों को जीता, उनमें आंध्र देश भी है। (भा. स. प. अध्या. 31. श्लो. 71)

3. "भागवत" में इस बात का उल्लेख है कि बलिचक्रवर्ती के छः बेटों ने अपने नाम पर विशेष तौर पर राज्य स्थापित किए और उनमें आंध्र नामक व्यक्ति ने आंध्र राज्य की स्थापना की। (नवम स्कंद, अध्या. 32, श्लो. 1-6)

इसमें यह बताया गया है कि ययाति के पुत्रों व अनुवु वंश में जन्मे "बलि" के अंग, वंग, कळिंग, सिंह, पुण्ड्रांध्र नामक छः पुत्र थे और उन्होंने अपने नामों पर अंग, वंग, कलिंग, सिंह (सुंहम) पुंड्रांध्र नामक छः देश स्थापित किए। इतना ही नहीं इनमें आंध्र राजा दशरथ है।

4. ई. सन् 553 के "जवानुपुर" शिलालेख में "पतिरंधमांध्रपतिना" का जिक्र है।

5. ई. सन् 555 के ईशानवर्मा द्वारा खुदवाए गए शिलालेख में यह उल्लेख है, "जित्वांध्राधिपतिम्।"

6. ई. सन् 600 के लगभग रहनेवाले वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में "कोशिक, विदर्भ वत्सांध्र छेदिकाश्चोर्वि तंडकाः" कहकर आंध्र देश का उल्लेख किया। 'तंडका' का अर्थ है प्रान्त।

7. ई. सन् 7 वीं शती में भारत की यात्रा पर आए चीनी यात्री हुयानत्सांग ने अपनी रचना में 'आंध्र देश' का उल्लेख किया।

8. ई. सन् 1072 में यशः कर्णादिव ने अपने खैरातम्र शिलालेख में यह उल्लेख किया, "आंध्रा देशमरंध्रदोर्विलसितम् भूवल्लि गोदावरी"।

9. ई. सन् 12 वीं शती में आंध्र देश पर शासन करनेवाले वेलनाटी दुर्जयों ने जो शिलालेख खुदवाया, उसमें "आंध्र" शब्द देशवाचक था। "पूर्वभोनिधि कालहस्ति शिखरि श्रीन्महेन्द्राचल श्रीशैल से वलयाकृत है"। इसमें उस समय के आंध्रदेश की सीमाओं का उल्लेख है।

(आ). अंधावदम्

ई. सन्. 240 के लगभग पल्लवों के राजा शिवस्कंध वर्मा ने नरसरावपेटा से 12 मील दूर पर स्थित मैदवोलु नामक गाँव में ताम्रदान शिलालेख लगवाया। उसे मैदवोलु शिलालेख कहते हैं। उसमें इस प्रकार लिखा हुआ है, "अगिवेसन गोत्तं सगोनं दिजस अंधा पथीयोगामो विरिपरम् अयहे हिन्दिकादिम् संपदतो।" इसका अर्थ है अग्निदेश के

सगोत्र गोनन्वार्य को आंध्रपथीय गांव विरिमर्स, धारापूर्वक संप्रदत्त है ।" इसमें अंधपथीय का मतलब आन्ध्र देश है । इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि ई. सन् के आरंभ तक 'आंध्र' पथ नामक नाम प्रयोग में था । यह मैदवोलु शिलालेख ही आंध्र पथ के देशपरक रूप में दीखनेवाला पहला शिलालेख है ।

(इ). अंध रट्टा

बौद्ध वाङ्मय में पाली ग्रंथों में 'अंधक रट्टि' नामक शब्द है । प्रसिद्ध आलोचक श्री मल्लंपल्लि सोमशेखर शर्मा जी का विचार है कि यह आंध्र राज्य है और आंध्र तथा अंधक एक ही थे ।

(ई). आंध्र पद

आंध्रों के निवास के बारे में सबसे पहले बौद्धों की जातक कथाओं में वर्णन दीखता है । "भीमसेन जातक" में आंध्र शब्द का प्रस्ताव है ।

(उ). आंध्र मंडल

ई.सन्. 340 में मल्लदेव नंदिवर्मा द्वारा खुदवाये शिलालेख में यह लिखा गया है आन्ध्र मंडले द्वादश सहस्र ग्राम सप्तार्थ लक्ष विषयाधिपतेः। भाव यह है कि यहाँ पर "आंध्र मंडल" का अर्थ आंध्र देश ही है । ई. सन् 234 का आंध्र पद ई. सन् 340 तक आंध्र मंडल हो गया है ।

(ऊ). आंध्र विषयम्

1. 'आंध्र विषयम्' नामक शब्द का प्रयोग नन्नेचोडु के "कुमार संभवमु"" में है । (कु. सं. प्र. अ. पृ.23)

2. राजराजु के प्रशासन - क्षेत्र के बारे में बतानेवाले शिलालेख में इस प्रकार लिखा गया है, "आंध्र विषयम् श्रीराजराजस्स्वयम्" ।

III. भाषावाचक के रूप में आंध्र शब्द

ई.सन् 11 वीं शती के पहले संस्कृत वाङ्मय में भाषापरक दृष्टि से 'आंध्र' शब्द का प्रयोग नहीं था ।

1. भरत मुनि के "नाट्यशास्त्र में भाषाओं के जिन सात प्रकारों के बारे में बताया गया, वे शकार, चंडाल, शबर, द्रमिल और आंध्र वनचरों के व्यवहार में आनेवाली थीं । यहाँ पर 'आंध्र' शब्द का प्रयोग भरत ने भाषापरक रूप में किया ।

2. नन्नया कृत नंदंपूडी शिलाशासन (शासनकाल 23.11.1053) में नन्नया ने नारायण भट्ट की, बहुभाषा कोविद के रूप में प्रशंसा की । (नंदपूडी शिलालेख 74-79) "संस्कृत कर्णाट प्राकृत पैशाचिकांध्र भाषा कवि राजशेखर इति प्रथितस्सु कवित्व विभवेन" लिखा गया है । नारायण भट्ट को आंध्र भाषा के भी महाकवि के रूप में नन्नया ने बताया । आंध्र शब्द का प्रयोग सबसे पहले भाषा के रूप में इसी शिलालेख में प्रयुक्त हुआ ।

3. कुछ आलोचकों का मत था कि "आंध्र शब्द चिंतामणि" नन्नया के द्वारा लिखा गया, उसमें 'आंध्र' शब्द भाषावाचक ही था । इससे यह मालूम होता है कि नन्नया के काल के शिलालेख के अलावा उनके ग्रंथ में भी 'आंध्र' शब्द का प्रयोग भाषापरक ही था ।

4. तिक्कना ने नन्नया का संबोधन "आंध्र कवित्व विशारद" के रूप में किया । "दादि दोडंगि मूडु कृतलांध्र कवित्व विशारदुंडिवि ।"

(महाभारत. विराट पर्व. 16)

5. तिक्कना के शिष्य मूलघटिका केतना ने अपने लक्षण ग्रंथ का नाम 'आंध्र भाषाभूषणमु' रखा। यहाँ पर 'आंध्र' शब्द का प्रयोग भाषावाचक के रूप में किया। अपने लक्षण ग्रंथ के लिए रखे नाम के अलावा, ग्रंथ में भी 'आंध्र' शब्द का प्रयोग भाषावाचक रूप में किया।

6. ई. सन् 1273 के श्रीकाकुल के शिलालेख में यह लिखा है, "आंध्रीचकार वह भारतवंश वृत्तम्"। यहाँ पर 'आंध्र' शब्द भाषावाचक है। इस तरह ई.सन्. 11 वीं शती से सारे कवियों ने 'आंध्र' शब्द का प्रयोग भाषावाचक रूप में किया।

उपर्युक्त सारे विषयों का समग्र अनुशीलन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ई. पू. 8वीं शती से 'आंध्र' शब्द का प्रयोग जातिवाचक, देशवाचक व भाषावाचक रूप में होता था।

2.3. तेलुगु लिपि का विकास

1. लिपि

विश्व में किसी भी भाषा के स्वरूप का बनना मानव के इतिहास में हम जितना प्रमुख समझते हैं, उसकी लिपि बनाना भी उतना ही प्रमुख है। पहला ग्रंथ कैसा था ? मुद्रित था ? हस्तलिखित था ? काग़जों पर बना ? या नहीं? ऐसे ग्रंथ उपलब्ध हों तो किस ग्रंथालय में मिलेंगे? सबसे पहला ग्रंथ आज के ग्रंथों जैसा नहीं था। उसके हाथ पाँव थे। वह दरवाज़ों में पड़ा - रहनेवाला नहीं था। हिलनेवाला या हिलानेवाला, बोल सकनेवाला, गीत गानेवाला था। वह प्राणयुक्त ग्रथं था। वह तो मानव ग्रंथ था। अर्थात् मानव ही था।"

विश्व की पहली साहित्य संपत्ति के रूप में हम जिस वेद पर विश्वास करते हैं, उसका व्यवहार श्रुति के नाम से किया जाता है। श्रुति का अर्थ है सुनना। वेद का अर्थ और कुछ नहीं है। अपने आदिपुरुषों के अनुभव, आदर्श, आश्चर्य आदि अनेक मनोविकार, कल्पनाएँ, जिज्ञासाएँ आदि ऐसे और भी जानने योग्य विषयों से युक्त संकलन है। इसका आज तक प्रमुख रूप से गुरुमुख द्वारा सीखना हमारे प्राचीन संप्रदाय का प्रमाण है।

संस्कृत में "लिप्" नामक धातु से 'लिपि' शब्द बना है। प्राचीन फारसी तीर जैसे चिह्नों से एक लिपि का उपयोग करते थे। पश्चिमी पंडित इसका व्यवहार "क्यूनिफारम" लिपि के नाम से करते थे। मिश्र देश में एक जमाने में "चित्रलिपि" के रूप में जिसका उपयोग होता था, पश्चिमी पंडितों का मत था कि यही लिपि कालान्तर में "वक्र रेखा लिपि" के रूप में परिवर्तित हुई। यही लिपि विश्व भर में विस्तृत रूप से व्याप्त होकर अनेक लिपियों की मातृक के रूप में बदल गयी।

2. प्राचीन लिपियाँ

प्राचीन काल में मानव थोड़ी-सी दूरी पर स्थित मानव को अपने भावों व विचारों को व्यक्त करने के लिए उन संकेतों को चित्रों के रूप में, पत्थर पर या लकड़ी पर खोदकर भेजा करता था। ये ही शिल्पियों की निपुणता के कारण कालान्तर में लिपि का रूप धारण करने लगे।

प्राचीन लिपियों को भाषावैज्ञानिकों ने इस प्रकार वर्गीकृत किया-

1. हैरोग्लिफ़िक लिपि

2. क्यूनि फ़ारम लिपि

3. क्रीटु लिपि

4. सेमेटिक लिपि

5. फ़ोनीशियन लिपि

1. हैरोग्लिफिक लिपि

मिश्र देश में प्रचलित होने के कारण इसे "ईजिप्शियन लिपि" भी कहते हैं। पशु-पक्षी आदि अनेक चित्रों के रूप में रहने के कारण इसे "चित्रलिपि" या "गंड़िया लिपि" कहते थे। भाषावैज्ञानिकों का मत है कि यह लिपि 5000 वर्ष पुरानी है।

2. क्यूनिफ़ारम लिपि

इसी को "बाणमुख लिपि" भी कहते हैं। बाण की नोकों के जैसे चिह्नों से युक्त होने के कारण इसे "बाणमुखलिपि" के नाम से व्यवहृत करते हैं। पारसीक देश में यह लिखित है।

इस प्रकार चिह्नों से युक्त इस लिपि को "क्यूनिफ़ार्म लिपि" कहते हैं। अरबों ने इस चिह्नों को कीलों के रूप में समझकर "कील लिपि" के अर्थ में "मिस्कादि लिपि" का नाम दिया। यह लिपि बाबिलोनिया व अस्सीरिया के बीच के प्रान्तों में थी।

3. क्रीटु लिपि

यह लिपि भूमध्य सागर में "क्रीटु" नामक द्वीप में ढ़ेलों पर खुदी हुई है। इसीलिए इसका नाम "क्रीटु लिपि" पड़ा। भाषावैज्ञानिकों का मत है कि यह लिपि ई.पू.2000 की थी।

4. सेमेटिक लिपि

ईजिप्शियन लिपि में गुड़यों की तरह सेमे जातिवालों ने लिपि के रूप में अपनाकर इसका उपयोग करने के कारण "सेमिटिक लिपि" का नाम पड़ा। भाषावैज्ञानिकों का मत है कि यह लिपि 3000 वर्ष पुरानी थी।

5. फ़ोनीशियन लिपि

सिरिया देश के समुद्रतटीय फोनीशिया प्रान्त के लोगों की लिपि होने के कारण इस लिपि का नाम "फ़ोनीशियन लिपि" पड़ा। भाषावैज्ञानिकों का मत है कि वाणिज्य व व्यापार से जीविका चलानेवाले लोगों ने "सेमेटिक लिपि" को और भी सुलभतर बनाया। यही लिपि बाद में व्याप्त होकर नवीन ग्रीक और आज की अंग्रेज़ी लिपियों का मूलाधार बनी।

2.3.1. तेलुगु लिपि - परिणाम

प्राच्य व पाश्चात्य पंडितों का मत है कि "चित्र लिपि" से ही "भारतीय लिपि" का विकास हुआ। भारतीय लिपि बहुत प्राचीन है। प्राचीन साहित्य ऋग्वेद व यजुर्वेद के तैत्तरीय संहिता में जो वर्ण थे, उनके अनुशीलन, शतपथ ब्राह्मण में स्थित वर्णों के अनुसार पंचविंशति ब्राह्मण में स्थित गणन पद्धति के अनुसार भारत देश में "लेखनपद्धति"

पहले ही रही होगी, ऐसी कल्पना की संभावना है। ई.पू. 8 वीं शती के पाणिनि ने लिपि व लिपिकर शब्द को यवनानी नामक लिपि विशेष के बारे में बताया, ई. पू. चौथी शती के व्यक्ति के रूप में आलोचकों ने जिस कौटिल्य के बारे में अभिप्राय व्यक्त किया, उसके "अर्थशास्त्र" में कहा गया कि चौल विधि के बाद की लिपि व 'संख्यागणन' सीखने की राजकुमारों ने इच्छा व्यक्त की, इससे यह साफ़ मालूम होता है कि भारत देश में बहुत प्राचीन काल से लिपि थी। लिपि का प्रस्ताव वैदिक साहित्य के अलावा जैन व बौद्ध साहित्यों में भी कई स्थानों पर दीखता है।

ई. पू. 300 वर्ष के जैनों के "समवायांगण सूत्र" में 18 लिपियों तथा महायान बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रंथ "ललितविस्तरमू" में 64 लिपियों के होने का विवरण है। श्री टी. वी. महालिंगमू के अनुसार बुद्ध के पहले ही "तमिलसंगम" साहित्य में लेखन पद्धति थी। शोधकर्ताओं के अनुसार यह पता चलता है कि तेलुगु देश में अशोक से पूर्व ही लिपि थी। यह 'शासन लिपि' अशोक के शिलालेखों की लिपि के निकट है। पंडितों ने इस लिपि को 'ब्राह्मी लिपि' बताया। सर कनिंगहोम का मत था कि यह ब्राह्मी लिपि भारत देश में 'चित्रलिपि' द्वारा रूपायित हुई। पर डेविड डिरिंजर व जार्ज जैसै पंडितों ने यह मत प्रकट किया कि 'ब्राह्मी लिपि' मिश्र की "चित्रलिपि" से उत्पन्न फोनीशियन लिपि से उत्पन्न हुई। आर. बी. देशपांडे ने इस वाद का तीव्र रूप से खंडन किया। चाहे कुछ भी हो, अधिकतर पंडितों के मत के अनुसार भारत देश की सारी लिपियाँ "ब्राह्मी लिपि" से ही उत्पन्न हुई।

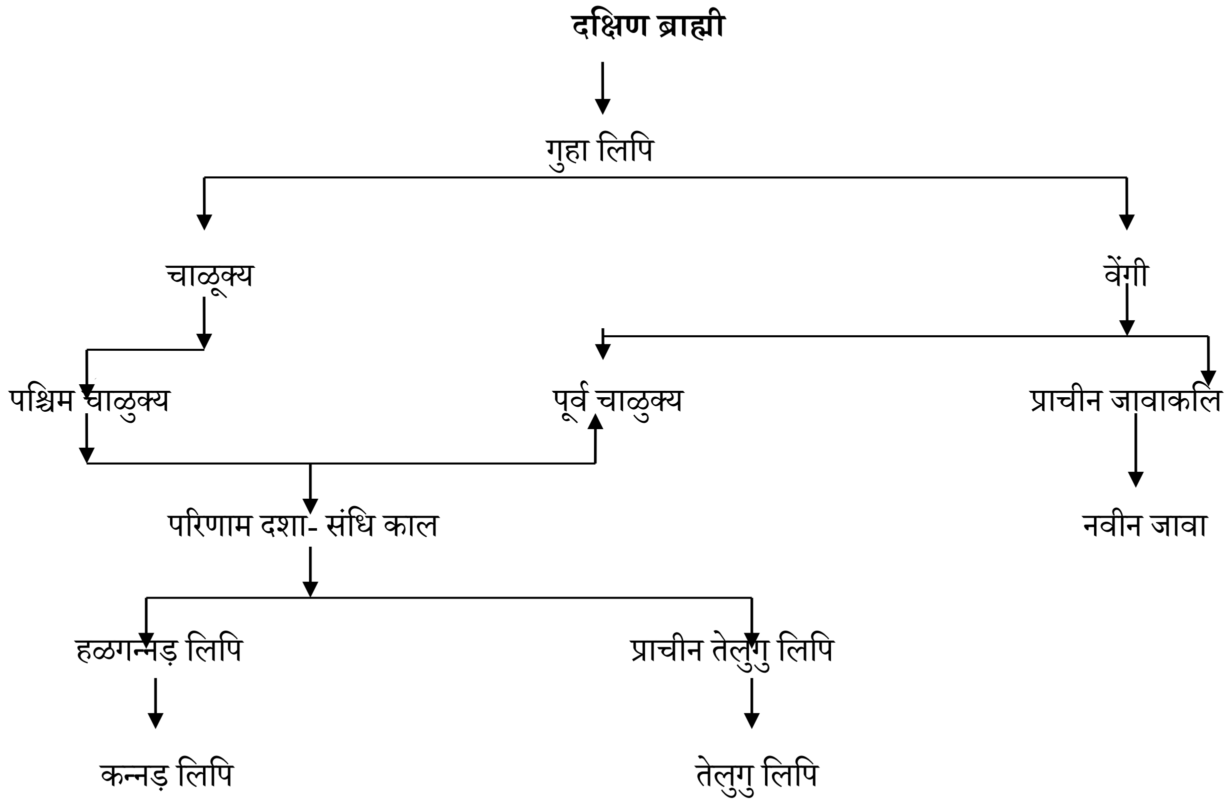

तेलुगु देश में अशोक के शिलालेखों व गुंटूरु जिले के भट्टिप्रोलु में एक स्थूप में स्थूप के स्थापकों के नामों से युक्त तीन छोटी पेटिकाएँ व पिटारियाँ मिलीं। उनपर जो लिपि है, वह अशोक की लिपि से साम्यता रखती है। लेकिन घ, च, द, ध, म, ल, ळ और ष के अक्षर अलग रूप से दिखाई देने के कारण ब्यूलर ने यह मत व्यक्त किया कि यह लिपि "द्रविड़ ब्राह्मी लिपि"' है। उनका यह भी मत था कि यह लिपि ई.पू. तीन शतियों से पहले ही अलग हो गयी।

"दक्षिण ब्राह्मी लिपि" से "तेलुगु लिपि" उत्पन्न हुई। भारत देश पर अनेक राजाओं ने शासन किया। इन्होंने अपने शासनकाल में अनेक शिलालेखों की लिपियाँ भी उन राजाओं के नाम पर ही थीं। "शातवाहन लिपि"" या "तेलुगु लिपि", "इक्ष्वाकों की लिपि", "पल्लवों की लिपि", "वेंगी लिपि"", "चाळुक्यों की लिपि"" व "काकतीय लिपि" आदि का अधिक प्रचार हुआ।

इक्ष्वाकु राजाओं ने तेलुगु देश पर 50 वर्ष तक शासन किया। उसके बाद शालंकायनों ने वेंगी नगर को राजाधानी बनाकर तेलुगु प्रान्त पर शासन किया। उनके जमाने में "ब्राह्मी लिपि" में कई परिवर्तन हुए।

शालंकायानों के बाद विष्णुकुंडिनों ने तेलुगु देश पर शासन किया। उनके समय में लिपि में बहुत से परिवर्तन हुए। यह लिपि - परिणाम उल्लेखनीय है। इसी लिपि का व्यवहार "वेंगी लिपि" के नाम से किया गया। इस लिपि का विस्तार तेलुगु देश के अलावा पूरे दक्खिन भारत भर में व्याप्त हो गयी। यही "तेलुगु कन्नड़ लिपि" का पूर्व रूप है। शालंकायनों के समय में कुछ वर्णों पर जो आड़ी रेखा दीख पड़ी, वह विष्णुकुंडिनों के समय में भी पड़ी। प्राचीन काल में स्थित "**ఙ**" का निराला अक्षर विष्णुकुंडिनों के समय में भी था। यह वर्ण नन्नया के युग तक था। कालान्तर में यह "ड" व "र" के रूप में परिवर्तित हुआ। विष्णुकुंडिनों के शिलालेखों में यह आड़ी रेखा कालान्तर में लंबी व टेढ़ी बनकर शिरोरेखा के रूप में स्थिर हो गई।

विष्णुकुंडिनों के बाद सातवीं शती में चाळुक्यों नें शासन चलाया। इनका भाषा व तेलुगु देश पर अत्यधिक अनुराग था। चाळुक्यों के समय में शिलालेख तेलुगु भाषा में निकले। यह परिणाम हर्षदायक था। इनके लगवाए शिलालेखों में कुब्जविष्णुवर्द्धन का शिलालेख अत्यंत प्राचीन था। इनका शासनकाल ई. सन्. 622 के लगभग था। इस काल की लिपि को पंडितों ने "वेंगी - चालुक्य लिपि" कहा।

2.4. तेलुगु भाषा - युगों का विभाजन

तेलुगु भाषा का, लगभग दो हजार वर्ष का इतिहास है। ऐसे सुदीर्घ इतिहास से युक्त इस भाषा का अध्ययन करने और परिणामों को पहचानने के लिए भाषा वैज्ञानिकों ने इसका कुछ युगों में वर्गीकरण किया।

कोराडा रामकृष्णय्या, डॉ सुनीत कुमार चटर्जी, आचार्य गंटि जोगि सोमयाजि, आचार्या नायनि कृष्णकुमारी, आचार्य तम्मारेड्डी निर्मला व आचार्य भद्रिराजु कृष्णमूर्ति जैसे प्रमुख भाषावशास्त्रियों ने "तेलुगु भाषा के इतिहास" का, अपने - अपने सिध्दांत के अनुसार विभाजन किया।

1. श्री कोराडा रामकृष्णय्या

कोराडा रामकृष्णय्या ने "तेलुगु भाषा के इतिहास" का तीन भागों में विभाजन किया 1. प्राचीन युग, 2. मध्य युग और 3. आधुनिक युग।

तेलुगु भाषा का वर्गीकरण

I	II	III
प्राचीन युग	मध्य युग	आधुनिक युग

कोराडा जी के वर्गीकरण में शासन व काव्य भाषाओं का उल्लेख नहीं है। इन्होंने आधुनिक युग का विभाजन सन् 1800 से किया है। भाषा पंडितों का मत है इस विभाजन में कुछ कमी है।

2. डॉ सुनीतकुमार चटर्जी "Languages and Literatures of India"

"तेलुगु भाषा का इतिहास" का चटर्जी ने अपने ग्रंथ, "Languages and Literatures of India" में तीन भागों में विभाजन किया। अंतर्विभाजन भी दीखता है।

Telugu Language Classification

I	II	III
Old Telugu	Medieval Telugu	New or Modern

1. Old Telugu (Not represented in Literature) up to 1000 A.D

2. Medieval Telugu (1000 1800 A.D.)

i. Early Medieval Telugu (1000 - 1350)

ii. Second Medieval Telugu (1350 - 1500)

iii. Third Medieval Telugu (1500 1650)

iv. Fourth Medieval Telugu (1650 - 1800)

3. New or Modern Telugu

After 1800 A.D. With its latest Phases after.

चटर्जी जी ने ई. सन्. 1000 तक के काल का विशेष रूप से वर्गीकरण किया। उन्होंने "शासन भाषा का इतिहास" को old Telugu के रूप में उल्लिखित किया। कोराडा रामकृष्णय्या जी ने मध्ययुग का उल्लोख किया। पर इसमें चार अंतर्विभागों ने स्थान पाया।

3. आचार्य गंटि जागि सोमयाजि "आंध्र भाष्ण विकासमु"

"आंध्र भाषा विकासमु" नामक अपने ग्रंथ में आचार्य गंटि जोगि सोमयाजि जी ने "तेलुगु भाषा का इतिहास" का तीन भागों में विभाजन किया।

तेलुगु भाषा के इतिहास का वर्गीकरण

I	II	III
नन्नया के पूर्व की तेलुगु	नन्नया के समय की तेलुगु	नन्नया के बाद की तेलुगु
(प्राड्. नन्नया युग)	(नन्नयोत्तर युग)	(नन्नया का युग)

सोमयाजि जी ने विशेष तौर पर नन्नया के समय की तेलुगु के नाम से एक युग का नाम दिया। नन्नया के बाद के पूरे काल के लिए एक युग बताया। नन्नया के युग के बाद भाषा में कई परिवर्तन हुए। इन सारे विषयों को एक युग में समझना युक्ति संगत नहीं है। इसलिए भाषा-शास्त्रियों ने सोमयाजि जी के वर्गीकरण को स्वीकार नहीं किया।

4. आचार्या नायनि कृष्ण कुमारी - आचार्या तम्मारेड्डी निर्मला का "तेलुगु भाषा का इतिहास" तुलनात्मक अनुशीलन

श्रीमती कृष्ण कुमारी और निर्मला इन दोनों ने "तेलुगु भाषा का इतिहास", "तुलनात्मक परिशीलन" नामक ग्रंथ में तेलुगु भाषा के इतिहास का तीन भागों में विभाजन किया।

तेलुगु भाषा के इतिहास का वर्गीकरण

I	II	III
प्राङ्नन्नय का युग	मध्य युग	आधुनिक युग
(1000 तक)	(नन्नया से 1848 तक)	(1848 से 1984 तक)

5. आचार्य भद्रिराजु कृष्णमूर्ति "तेलुगु भाषा का इतिहास"

आंध्र प्रदेश साहित्य एकाडमी ने आचार्य भद्रिराजु कृष्णमूर्ति जी के संपादकत्व में "तेलुगु भाषा चरित्र" को प्रकाशित किया। इसमें कृष्णमूर्ति जी ने "तेलुगु भाषा का इतिहास" का परिणाम की दृष्टि से चार भागों में वर्गीकरण किया।

तेलुगु भाषा के इतिहास का वर्गीकरण

I	II	III	IV
पहली दशा	दूसरी दशा	**तीसरी दशा**	चौथी दशा
(ई.पू. 200 से ई. सन्.500)	(ई.सन्.500 से 1100 तक)	(ई.सन्.1100 से 1400 तक)	(ई. सन्.1400 से 1900 तक)

"तेलुगु भाषा चरित्र" (इतिहास) का भाषा-शास्त्रियों ने चार भागों में वर्गीकरण किया। इन सबका अनुशीलन सावधानी से और पैनी दृष्टि से करने पर निम्न वर्गीकरण समीचीन लगता है।

तेलुगु भाषा का इतिहास- वर्गीकरण

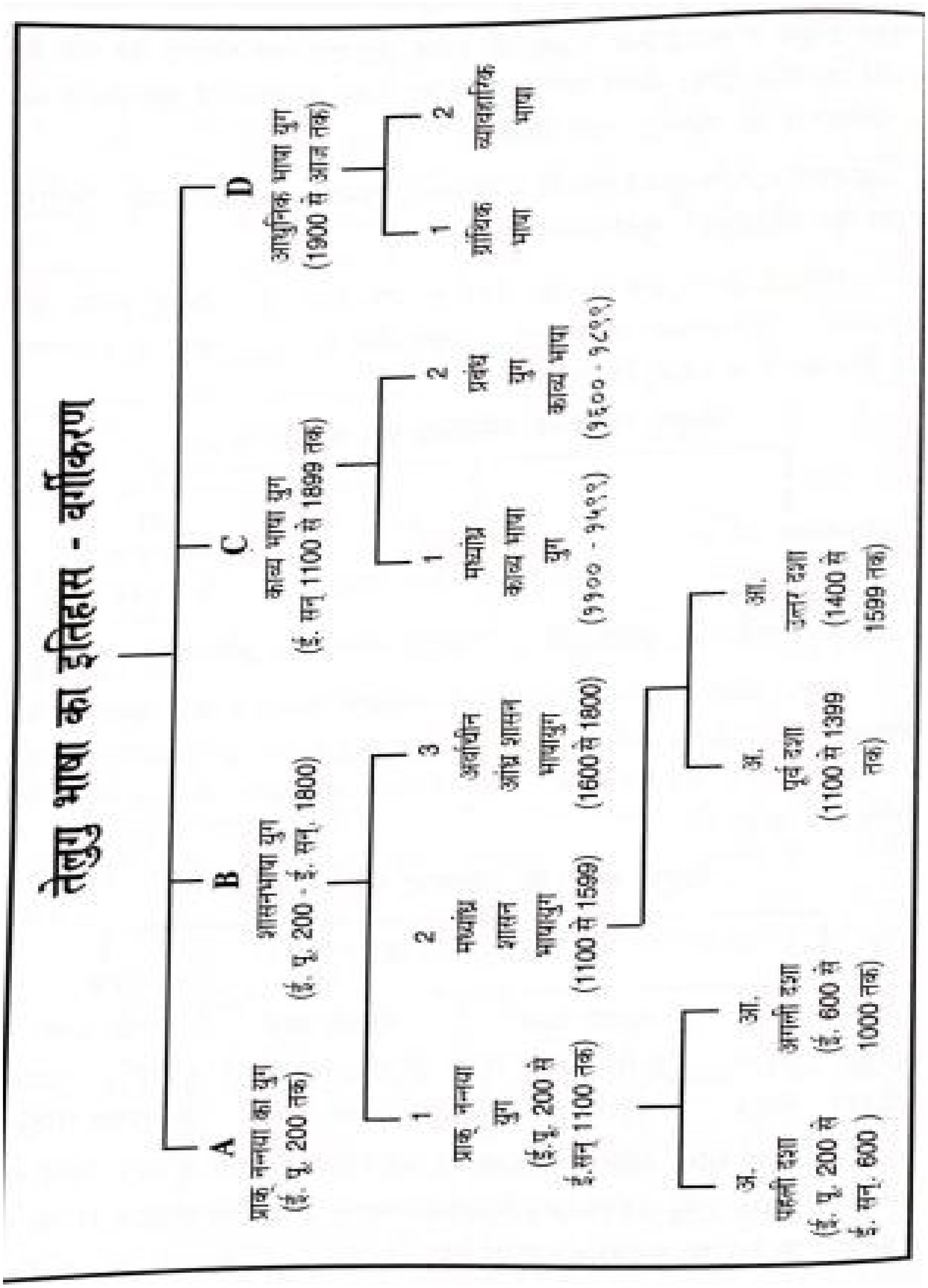

(अ). प्राक् शासन युग (ई. पू. 200 तक)

जहाँ तक तेलुगु भाषा का संबंध है, पहले आधार के रूप में प्राप्त शिलालेखों का पूर्व काल है यह। इसलिए इस युग का वर्गीकरण प्राक् शासन युग के रुप में किया गया है।

(आ). शासन भाषा युग (ई. पू. 200 - ई. सन् 1800)

शासन भाषा युग में मुख्यतः तीन भेद उपस्थित हुए। एक तो प्राड् नन्नया युग है। दूसरा मध्यांध्र शासन भाषा का युग है और तीसरा आर्वाचीनांध्र शासन भाषा का युग है। इनमें फिर अंतर्भाग हैं।

शासन भाषा युग

- **I** प्राडूनन्नय या भाषा युग
  - अ. पहली दशा
  - आ. उत्तरदशा
- **II** मध्यांध्र शासन या भाषा युग
  - अ. पहली दशा
  - आ. उत्तरदशा
- **III** अर्वाचीनांध्र शासन या भाषा युग

1. प्राडू. नन्नया युग (ई. पू. 200 से ई.सन्. 1100)

प्राड् नन्नया युग में प्रधानतः दो भेद प्रकट होते हैं। 1. पहली दशा और 2.उत्तरदशा।

(अ). पहली दशा (ई.पू.200 - ई. सन्. 600)

पहली दशा को भाषा शास्त्री संस्कृत - प्राकृत भाषा युग के नाम से पुकारते हैं।

(आ). उत्तर दशा (ई.सन् 600 - 1100)

इसीको मध्यकाल भी कहते हैं। रेनाटीचोळों के समय जो पहला शिलालेख प्रकट हुआ, वह ई. सन् 575 के लगभग प्रकट एर्रगुडिपाडु का शिलालेख है। 575 से 1100 तक प्रकट हुए शिलालेखों की भाषा से संबंधित काल को उत्तर दशा कह सकते हैं।

2. मध्यांध्र शासन युग (ई. सन् 1100 - 1599)

शासन भाषा युग में दो दशाएँ हैं। 1. पूर्व दशा 2. उत्तर दशा।

(अ). पूर्व दशा (1100 से 1399)

ई. सन्.1100 से 1399 तक के काल को 'पूर्व दशा' के रूप में कह सकते हैं। काकतीय साम्राज्य के पतन, विजयनगर, अद्दंकि, कोंडवीडु व रेचर्ला साम्राज्य की स्थापना तक के समय में उन-उन राजवंशों के द्वारा खुदवाए शिलालेखों से संबंधित भाषा तेलुगु भाषा है।

(आ). उत्तर दशा (1400-1599)

पूर्व दशा के अंत से विजयनगर साम्राज्य के पतन तक के काल को 'उत्तर दशा' कह सकते हैं।

3. अर्वाचीन शासन भाषा युग (1600-1800)

ई. सन् 1600 से 1800 के बीच के काल को 'अर्वाचीन शासन भाषा युग' बता सकते हैं। दक्षिणांध्र युग के राज्याधिपतियों, गोल्कोंडा के सुलतानों व तेलुगु देश पर शासन करनेवाले अन्य राजाओं के द्वारा खुदवाए गए शिलालेखों से संबधित भाषा इस युग की तेलुगु भाषा है।

(इ). काव्य भाषा युग (ई. सन्. 1100 से 1899)

"काव्य भाषा युग" के प्रधानतः दो भेद हैं। 1. "मध्यांध्र भाषा युग" और 2. "प्रबंध युग काव्य भाषा"।

1. मध्यांध्र काव्य भाषा युग (ई. सन् 1100 से 1599)

ई. सन् 1100 से 1599 तक के बीच के काल में निकले काव्य भाषा का अनुशीलन काव्य भाषा युग के अंतर्गत आता है।

2. प्रबंध युग का काव्य भाषा युग (1600 - 1899)

ई. सन् 1600 से 1899 तक के समय में निकले काव्य भाषा युग से संबधित यह भाषा है।

(ई). आधुनिक युग (1900 से अब तक)

अंग्रेजों के प्रभाव से अनेक नवीन साहित्य की विधाएँ उत्यन्न हुई। नाटक, कथा, निबंध, समीक्षा, अनुवाद, जीवनी, आत्मकथा, आलोचना, पत्रकारिता आदि इसी युग में आयीं। रेडियो, दूरदर्शन, इंटरनेट ये सारे आधुनिक युग की देन हैं।

इसी युग में ग्रांथिक व व्यवाहारिक भाषा के आंदोलन शुरु हुए। आधुनिक युग में तेलुगु अनेक परिवर्तनों के अधीन हुई। इस युग में भाषा का अभूतपूर्व विकास हुआ है।

इस प्रकार तेलुगु भाषा उन-उन युगों में अनेक परिवर्तनों के अधीन विस्तृत होकर वृद्धि पाती हुई चली, आज उसने विशिष्ट परिणाम प्राप्त किया।

2.5. सारांश

सारांश के रूप यह कह सकते हैं कि भारतीय भाषाओं के वर्गीकरण के बादहम यह भी जान चुके हैं कि भाषा का उद्भव, विकास किस प्रकार हुआ है और भारतीय परिवारों के अंतः संबों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करते हुए आन्ध्र शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई और आन्ध्र शब्द का प्रयोग कब से किया गया इसकी जानकारी हमें मिल चुकी हैं। इसके साथ-साथ तेलुगु भाषा का इतिहास और युग विभाजन के दौरान हम यह समझ में आया है कि तेलुगु शब्द का मूलरूप संस्कृत में "त्रिलिंग" है। इसका तात्पर्य आंध्र प्रदेश के श्रीशैल के मल्लिकार्जुन लिंग, कालेश्वर और द्राक्षाराम के शिवलिंग से है। इन तीनों सीमाओं से घिरा देश त्रिलिंगदेश और यहाँ की भाषा त्रिलिंग (तेलुगु) कहलाई। इस शब्द का प्रयोग तेलुगु के आदि-कवि "नन्नय भट्ट" के महाभारत में मिलता है।

2.6. बोध प्रश्न

1. आन्ध्र शब्द की व्युत्पत्ति और इतिहास के बारे में लिखिए।

2. तेलुगु लिपि का विकास के बारे में लिखिए।

3. तेलुगु भाषा का युग विभाजन के बारे में विस्तार रूप में लिखिए।

2.7. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

➢ सूचना

इस इकाई में दी गयी तालिकाएँ, तेलुगु भाषा का इतिहास-संपादक- आचार्य वेलमला सिम्मन्ना, हिन्दी रूपांतर-प्रो. एस. ए. सूर्यनारायण वर्मा पुस्तक से संपन्न हुआ है।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

3. प्राचीन तेलुगु साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ

3.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम भारतीय भाषाएँ, भाषा परिवारों और तेलुगु भाषा का इतिहास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । इस इकाई के अंतर्गत पूर्वकालीन तेलुगु साहित्य के युग प्रवृत्तियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे । आप इस इकाई को पढ़ने के बाद तेलुगु के आदि कवि नन्नय्या- श्रीनाथ युग, तेलुगु के प्रबंध युग या रायल युग, पद साहित्य-शतक साहित्य के बारे में विस्तृत अध्ययन कर पायेंगे ।

रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना

3.2. नन्नय्या युगु

3.3. श्रीनाथ युग

3.4. प्रबंध या रायल युग

3.5. पद और शतक साहित्य

3.6. सारांश

3.7. बोध प्रश्न

3.8. सहायक ग्रंथ

3.1. प्रस्तावना

आंध्र दक्षिण भारत का अत्यंत समृद्ध प्रदेश है । पूर्वी इटालियन मानी जानेवाली उसकी भाषा तेलुगु आधुनिक भारतीय भाषाओं में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारी है । अत्यंत प्रौढ़, कलात्मक एवं समृद्ध साहित्य का उपलब्ध होना उसके इस अधिकार की आधार भूत योग्यता है । अन्य भारतीय भाषाओं की तरह ई. 10 वीं सदी के आस पास ही इस समृद्ध भाषा का पूर्ण विकास हुआ था । तथा कवियों की सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिए एक सार्थक वाहिका बनी थी । भाषा के स्तर पर तेलुगु स्वरांत बहुला भाषा है । शहद जैसा मिठास उसके प्रयोग में रिसता है । इसलिए उसका एक नाम 'तेनुगु' (तेलुगु में शहद को 'तेने' कहा जाता है । उस में प्रत्यय के जुड़ने से 'तेनुगु' बना है ।) भाषा की तरह तेलुगु साहित्य भी बहु-फल- रस जैसा मधुर एवं कर्ण प्रिय साहित्य है ।

तेलुगु में लगभग एक हजार साल का बहु विषय साहित्य उपलब्ध होता है । तेलुगु में आदि कवि नन्नय्या हैं । उनका समय ई. 11 वीं सदी का पूर्वार्ध माना जाता है । तब से लेकर अब तक एक लंबा व समृद्ध इतिहास तेलुगु साहित्य का रहा है । इस लंबी कालवधि को साहित्येतिहासकारों ने कवि, साहित्यिक प्रवृत्ति तथा साहित्य का पोषण करनेवाले राजाओं के नामों के आधार पर युग विभाजन व नामकरण किया है । उनमें सर्वाधिक प्रचलित व वैज्ञानिक वर्गीकरण आचार्य पिंगली लक्ष्मी कांतम जी का माना जाता है । उन्होंने तेलुगु साहित्य के इतिहास का निम्न रूप से युग

विभाजन व नामकरण किया है। **1. पूर्व नन्नय्या यग**- (ई.प.200 से ई.1000 तक) **2. नन्नय्या युग** (ई. 11वीं सदी) **3. शिव कवि युग**- (ई. 12वीं सदी) **4. तिक्कन युग** - (ई. 13वीं सदी) **5. एर्रना युग** - (ई 1300 से ई. 1350 तक) **6. श्री नाथ युग** (ई. 1350 - ई. 1500 तक) **7. रायल युग या प्रबंध युग** (ई. 1500 से 1600 तक) **8. दक्षिणांध्र युग** - (ई. 1600 से 1775 तक) **9. क्षीण युग** (ई.1775 से 1875 तक) **10. आधुनिक युग** - (ई. 1875 से आज तक) इस में लगभग प्रारंभ से लेकर ई. 1350 तक अनुवाद के क्षेत्र में विशेष काम हुआ है। इस कालवधि को (ई. 1000 से 1350 तक) अनुवाद युग भी कहा जा सकता है। इस रूप में करने से अधिकांश मतभेद दूर हो जाएंगे तथा बहुल- संख्या दोष से युग विभाजन को बचाया भी जा सकता है।

3.2. नन्नय्या युग

आदि कवि नन्नय्या के पहले यानी पूर्व नन्नय्या युग में ग्रंथाकार की रचनाएँ नहीं के बराबर हैं। इस समय के साहित्य के बारे में परवर्ती रचनाओं में उल्लेख मात्र मिलता है। इस युग का वांङमय मुख्यतया शिलालेखों एवं दान पत्रों आदि के रूप में ही उपलब्ध होता है। इस युग के प्राप्त शिला लेखों में गुडरू, बेजवाड़ा, अर्द्धकि आदि लोकप्रिय हैं। इन में उस समय के शासन के अतिरिक्त साहित्य-शास्त्रादि का भी वर्णन मिलता है। इस युग की तेलुगु भाषा ज्यादा व्यावहारिक स्तर पर ही थी। साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत व प्राकृत भाषाओं का प्रयोग ही जारी था। इस युग के श्रीपति पंडित, अय्यन भट्ट, चेतन भट्ट, गजांकुश आदि कवियों के बारे में यत्रतत्र उल्लेख मात्र मिलता है।

तेलुगु में नन्नय्या युग के साथ ही काव्य रूप में लिखा गया साहित्य उपलब्ध होता है। नन्नय्या ई. सन् 1011 को वेंगी राज्य की गद्धी पर बैठनेवाले राजराज नरेन्द्र (विष्णु वर्धन) के दरबारी कवि थे। नन्नय्या ने इसी नरेश की प्रेरणा से संस्कृत महाभारत का तेलुगु की प्रथम रचना व प्रथम महाकाव्य रचना के रूप में अनुवाद किया था। इस से अधिक नन्नय्या की जीवनी के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है । नन्नय्या को **'वागानुशासक'** उपाधि से सम्मानित किया गया है। वे संस्कृत, प्राकृत व तेलुगु के प्रकांड पंड़ित - विद्वान थे। उन्होंने काव्य में 'चंपू' को अपनाया । संस्कृत के छंदों को तेलुगु में प्रयोग करके पंचम वेद माने जानेवाले संस्कृत महाभारत का तेलुगु में अनुवाद किया है। संपूर्ण संस्कृत महाभारत को कुल अठारह पर्वों में तेलुगु में अनुवाद किया गया है। उनमें 'नन्नय्या' ने आदि, सभा तथा अरण्य पर्व का कुछ भाग का ही अनुवाद किया है। उनके बाद इस अधूरे काम को 'तिक्कना' तथा 'एर्रना' नामक कवियों ने पूरा किया है। इन तीन कवियों को तेलुगु में **'कवित्रय'** कहते हैं। इनके कारण महाभारत कथा तेलुगु में अधिक प्रचलित हुई। उनकी अनुवाद शैली विशिष्ट होने के कारण ही यह संभव हो सका है।

नन्नय्या ने 'राजाराज नरेन्द्र' के आग्रह पर बड़े विनय के साथ संस्कृत छंदोबद्ध महाभारत को कथानुवाद, भावानुवाद तथा शब्दानुवाद की रीतियों में तेलुगु में अनुवाद किया। मूल की तरह कथाएँ, वर्णन, राजनीति शास्त्रादि विषयों का उन्होंने मूल बद्ध अनुवाद किया। घटनाओं एवं प्रसंगों की प्रासंगिकता को दृष्टि में रखकर मूल का यथा संभव अनुकरण किया है। तेलुगु के आलोचकों का यह विचार है कि नन्नय्या ने आदि से ज्यादा सभा पर्व में तथा सभा पर्व से ज्यादा अरण्य पर्व में मूल का अनुकरण किया है। अक्षौहिनी संख्या की गिनती, 'ययाती' के द्वारा प्रस्तुत जीवों का प्रजनन की रीति, शकुंतला दुष्यंत का प्रसंग, नारद और युधिष्ठिर के राजनीतिक संवाद, युधिष्ठिर को लेकर शिशुपाल का विरोध, नल-दमयंति की कहानी आदि प्रसंग मूल बद्ध ही हैं। 'सभा पर्व' में पांडवों से श्रीकृष्ण की छुट्टी लेना, तीर्थ यात्राओं का वर्णन, शकुंतला का जन्म, प्रमद्वरा का जन्म वृत्तांत, गरूड, इंद्र आदि की स्तुति, दुष्यंत का आखेट वर्णन आदि में भाव को बिगाड़े बिना संक्षेप किया है। इस के अतिरिक्त नन्नय्या की अनुवाद शैली में मूल

विस्तार मूल परिहरण तथा मूल मुक्त आदि रीतियाँ भी पायी जाती हैं। नन्नय्या की यह अनुवाद शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि तेलुगु में लोकोक्ति चल पड़ी कि 'तिंटे गारले तिनाली विंटे भारतमे विनाली' (अर्थात खाना हो तो मीठे बड़ा ही सुनना हो तो महाभारत ही सुनना है) नन्नय्या की इस लोकप्रिय शैली को बाद के कवियों ने भी अपनाया है।

तेलुगु में कवित्रय कवियों के बीच में यानी अनूदित रचनाओं के बीच में शैव भक्ति से संबंधित उच्च कोटि की काव्य रचनाएँ लिखी गयीं। इन काव्य रचनाओं के आधार पर सन् 1100-1225 तक के युग को 'शिव कवि युग' कहा जाता है। इस युग में मुख्य रूप से 'नन्नेचोडुडु', 'मल्लिखार्जुन पंडिताराध्य' तथा 'पाल्कुरिकि सोमनाथ' नामक शैव कवित्रय हुए हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से शैव धर्म का प्रचार किया है। नन्नेचोडुडु (सन् 1160) ने 'कुमार संभवम' काव्य लिखा। यह बारह आश्वासों का सुंदर महाकाव्य है। कुछ सीमा तक यह कालिदास के 'कुमार संभव' के आधार पर लिखा गया है। काव्य में मंगलाचरण, सुकवि स्तुति, कुकवि निंदा, पुरुषार्थ आदि का मनोहर चित्रण है।

आलोचकों का विचार है कि नन्नेचोडुडु ने पार्वती में कामाग्नि का, शिव में रोषाग्नि का, मन्मथ में कालाग्नि का तथा रति में शोकाग्नि का अद्वितीय वर्णन किया है। कथा वस्तु लगभग संस्कृत कुमार संभव की तरह ही है। इस में नायक शिव है तथा नायिका पार्वती है। इन दोनों के प्रेम- अनुराग के साथ संयोग-वियोग श्रृंगार वर्णन से पूरा काव्य भर पड़ा है। काव्य का मुख्य रस श्रृंगार है। पाल्कुरिकि सोमनाथ सन् 1160-1230 समय के हैं। 'अनुभवसारमु', 'बसवपुराणमु', 'वृषाधिप शतकमु', 'चतुर्वेद सारमु', 'पंडितराध्य चरित्र' आदि उनकी रचनाएँ हैं। सोमना संस्कृत, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं के विद्वान थे। सोमना का मुख्य लक्ष्य शैव धर्म प्रचार था। शैवेतरों को शैव धर्म में दीक्षा दिलाना इनकी रचनाओं का मुख्य उद्धेश्य है। शैव धर्म के प्रचार के लिए अपना सर्वस्व त्यागनेवाले बसवेश्वर इन के लिए आराध्य हैं। उन्हीं की जीवनी सोमना ने 'बसव पुराणमु' के रूप में लिखा है। कुछ सीमा तक इन में धार्मिक कट्टरता भी दिखाई पड़ती है। शिव दीक्षा लेने वालों के बारे में उन्होंने लिखा है-

भुविलो शिव दीक्षितुलगु

शिव भक्तुल पूर्व जाति जिंतिंचुट रौ

रव नरक भाजनम मा

शिवु भाषाणंबु गाग जिंतिंचु क्रियन ॥

अर्थात इस पृथ्वी में शिव दीक्षा लेकर शिव भक्त बने लोगों की पूर्व जाति के बारे में सोचने से नरक प्राप्त होगा। अतः शिव के बारे में सोचना उन के लिए हित होगा। इतना ही नहीं सोमना ने शिव को छोड़कर अन्य देवताओं की पूजा का भी विरोध किया है। उनकी दृष्टि में शिव ही परम ईश्वर है। 'पंडिताराध्य चरित्र' में आवेश के साथ उन्होंने लिखा है- 'गौरीशु मीद दैवंबु लेड़नि तल इच्चि वडयुदुनु' (अर्थात सर देकर मैं यह सिद्ध करूंगा कि गौरीश से बढ़कर कोई भगवान नहीं है) 'शिवु मीद नोकडु गलडन्न नायरका लेत्ति वानि नडुदल दन्नुदु' (अर्थात अगर कोई यह कहेगा कि शिव भगवान से कोई दूसरा बड़ा है तो मैं उसे लात मारूंगा) स्पष्ट है कि इन कवियों के काव्य शिवमय हैं। 'सिरियालुनि कथा' शिव कवियों के लिए अत्यंत प्रिय वस्तु है। परीक्षा लेने आये शिव को अपने बेटे (सिरियाल) को मार कर उसकी मांस खिलाने की कहानी सिरियाल की कहानी है। शिव कवियों के द्वारा लिखी गयी रचनाएँ लोक शैली और लोक भाषा में होने के कारण वे जन मध्य में अधिक लोकप्रिय हुई हैं।

तिक्कना और एर्रना कवित्रय के कवियों के साथ साथ अनुवाद युग के भी विशिष्ट कवि हैं। तिक्कना सन् 1210-1290 के बीच मनुमसिद्धि नामक राजा के दरबार में मंत्री तथा दरबारी कवि थे। 'कवि ब्रह्म' तथा 'उभय कवि मित्रुडु' उनकी उपाधियाँ हैं। 'निर्वचनोत्तर रामायण' के साथ साथ इन्होंने महाभारत के 15 पर्वो का अनुवाद किया है। इन्होंने अपनी अनूदित रचना 'महाभारत' को हरिहर नाथ को समर्पित किया है। वैष्णव तथा शैव धर्म का समन्वय इनकी विशेषता रही है। 'विष्णु रूपाया नमश्शिवाया' इनका नारा है। तिक्कना की अनुवाद शैली में नाटकीयता विशिष्ट गुण है। कीचक वध, संजय एवं श्रीकृष्ण दूत प्रसंग उनकी नाटकीयता के अमर प्रसंग हैं। प्रसंगोचित, पात्रोचित भाषा का प्रयोग करना पात्रों की सजीव कल्पना तिक्कना के काव्य की अन्य विशेषताएँ हैं। महाभारत मूलतः शांत रस प्रधान होने पर भी तिक्कना ने वीर, रौद्र, भीभत्स आदि रसों का भी सुमुचित पोषण किया है। प्रसंग के अनुसार नव रसों का संयोजन उनके काव्य में देखा जा संकता है। तिक्कना ने अपने अनुवाद में औचित्य को महत्व दिया। प्रसंगोचित संक्षिप्तीकरण उनकी एक और विशेषता है। महाभारत के 'गीता' प्रसंग को उन्होंने मात्र भाव को ग्रहण करके संक्षेपण किया है। कथा गति पर ही उनकी दृष्टि अधिक रमी है। वेदांतपरक विषयों पर नहीं। उद्योग पर्व में विदुर का उपदेश, विराट राज के दरबार का प्रसंग आदि में आवश्यक संक्षेपन तिक्कना ने किया है।

एर्रना सन् 1280-1360 के बीच प्रोलय वेमा रेड्डी नामक राजा के दरबारी थे। 'शंभु दासुडु' इनका दूसरा नाम है। एर्रना शिव भक्त हैं। 'प्रबंध परमेश्वरुडु' इनकी उपाधि है। 'एर्रना रामायणमु', 'हरिवंशमु', महाभारत के अरण्य पर्व का शेष भाग, 'नृसिंह पुराण' आदि इनकी महत्व पूर्ण रचनाएँ हैं। एर्रना ने महाभारत के अरण्य पर्व के चौथा आश्वास के 143 पद्य से अनुवाद किया है। नन्नय्या ने 142 पद्य तक अनुवाद कर के अधूरा छोड़ दिया था। आनुवाद शैली में एर्रना ने नन्नय्या का अधिक अनुकरण किया है। एर्रना प्रबंध पटु हैं। प्रबंध का मतलब विस्पष्ट बंधन रखनेवाला है। अष्टादश वर्णन उस में होते हैं। रस सृष्टि इस की अनिवार्यता है। कथा, पात्र, प्रकृति वर्णन आदि उस की अनिवार्य शर्तें हैं। ये सभी तत्व एर्रना के काव्य में देख सकते हैं। इस दृष्टि से उनके 'हरिवंशम', 'नृसिंह पुराणमु' विशेष उल्लेखनीय हैं। सूक्ति वैचित्री तथा पात्र चित्रण में भी एर्रना अद्वितीय कवि हैं।

नाचन सोमना एर्रना के ही समकालिक हैं। इन का समय ई.1344- 1380 माना जाता है। 'उत्तर हरिवंशमु', 'वसंत विलासमु', 'हरि विलासमु' इनकी रचनाएँ हैं। 'उत्तर हरिवंशमु' में नरकासुर वध, हंस दिंभकोपाख्यानम्, बाणासुर वृत्तांत, उषा परिणय वृत्तांत आदि प्रसंग वर्णित हैं। 'उत्तर हरिवंशम' ध्वनि प्रधान काव्य है। सोमना की कविता में अर्थ चमत्कार तथा भाव रमणीयता कूट-कूट कर भरी रहती है। कथा विन्यास की उन में अनुपम शक्ति है। उनमें कथाओं को माला में गूंथने की अद्वितीय प्रतिभा है।

तेलुगु में राम काव्यों की समृद्ध परंपरा है। संस्कृत में रचे गए वाल्मीकी रामायण ही इन में से अधिकांश का आधार है। इन रामायणों में श्रीराम के मानव व दिव्य रूप दोनों चित्रित हैं। वाल्मीकी रामायण से अलग लोक परंपरा से प्राप्त घटनाएँ एवं प्रसंग भी इन में पाए जाते हैं। इन में 'रंगनाथ रामायणमु', 'भास्कर रामायणमु' तथा 'मोल्ल रामायणमु' उल्लेखनीय है। 'रंगनाथ रामायणमु' द्विपद छंद में लिखा गया सब से प्राचीन तेलुगु रामायण है। कवि के बारे में मतभेद हैं। काव्य की अवतारिका के अनुसार गोना बुद्धा रेड्डी ने इसे लिखकर अपने पिताजी विट्ठल लक्ष्मिनाथ के नाम से प्रस्तुत किया है। परन्तु तेलुगु में कवि के नाम से रामायण को जोड़ कर प्रयोग करने की परंपरा है जैसे 'भास्कर रामायणमु', 'मोल्ल रामायणमु' आदि। अतः माना जाता है कि रंगनाथ नामक किसी कवि ने इसे लिखा होगा। परन्तु आज अधिकांश लोग इसे गोन बुद्धा रेड्डी का लिखा हुआ ही मानते हैं तथा इस का रचना काल सन् 1300 से 1305 के बीच माना जाता है।

रंगनाथ रामायण की कथा लगभग वाल्मीकी रामायण जैसी है। इस में कुछ अवाल्मीक अंश भी दिखाई पड़ते हैं। अहल्या वृत्तांत में इंद्र मुर्गा बन कर भांग देता है। जंबुमाली वृत्तांत, कालनेमि वृत्तांत आदि भी 'रंगनाथ रामायण' के मौलिक प्रसंग हैं। वाली के द्वारा राम की निंदा भी इस में दिखाई पड़ता है। इस रूप में रंगनाथ रामायण अत्यंत मनोहर तेलुगु रामायण है।

'भास्कर रामायणमु' चंपू रामायण काव्य है, शीर्षक से यह स्पष्ट है कि भास्कर नामक किसी कवि ने इसे लिखा है। परन्तु इस में मतभेद है कि यह भास्कर कौन है? हुलक्की भास्कर हैं या मंत्री भास्कर हैं? अधिकांश आलोचकों ने यह सिद्ध किया है कि इस का मंत्री भास्कर के साथ कोई संबंध नहीं है। कुछ आलोचकों का यह भी विचार है कि 'भास्कर रामायण' बहु कर्तृत्व है। बाल, किष्किंध तथा सुंदर कांड भास्कर के पुत्र मल्लिखार्जुन ने अयोध्या कांड उनके शिष्य रुद्र देव ने, अरण्य, युद्ध कांड के पूर्व भाग को हुलक्की भास्कर ने और युद्ध कांड के बाकी भाग को भास्कर के मित्र अय्यलार्य ने लिखा है। 'भास्कर रामायण' वाल्मीकी रामायण का कथानुवाद है। संक्षिप्तीकरण इसकी अन्यतम विशेषता

है।

'मोल्लरामायणमु' कवइत्री मोल्ला की रचना है। मोल्ला का समय ई. 15 वीं सदी माना जाता है। श्री कंठ मल्लेश्वर की कृपा से वाल्मीकी रामायण को आधार बनाकर स्वतंत्र रूप में मोल्ला ने इस संक्षिप्त रामायण को प्रणीत किया है। इसे मोल्ला ने श्रीरामचंद्र जी को ही समर्पित किया है। उन्होंने स्वयं अपने काव्य के बारे में लिखा है-

तेने सोक नोरु तीयनगु रीति

तोड नर्थ मेल्ल दोचकुंड

गूढ़ शब्दमुलनु गूर्चिन काव्यम्मु

मूग चेविटि वारि मुच्चटगुनु ।।

अर्थात जिस रूप में शहद के लगने से मुह मीठा हो जाता है उसी रूप में अर्थ समझ में आने पर भी इस काव्य में कुछ गूढ़ शब्द हैं। उनको समझे बिना यह उनके लिए बधिर और गूंगे जैसों का हो जाएगा। मोल्ला ने श्री राम के सुंदर रूप का मनोहर चित्रण किया है।

नील मेघच्चाय बोलु देहमु वाडु

धवलाब्ध पत्र नेत्रमुल वाडु

कंबु सन्निभमैन कंठंबु गल वाडु

बागैन यट्टि गुल्फमुल वाडु ।।

(अर्थात नीले बादल जैसा श्याम वर्णी शरीरवाला, सफेद पत्तों जैसा नेत्रवाला, शंख जैसा कंठवाला, विशाल भुजाओंवाला) मोल्ला की राम कथा में आध्यात्म एवं भास्कर रामायणों का संयोजन भी है। गोदावरी नदी को पार करते समय गुह का वृत्तांत आध्यात्म रामायण का है।

3.3. श्रीनाथ युग

श्रीनाथ युग तेलुगु में अत्यंत प्रौढ़ काव्यों का युग रहा है। राजनीतिक स्थिरता एवं राजाओं के साहित्य के प्रति विशिष्ट अभिरुचि के कारण इस युग में अनेक श्रेष्ठ काव्य रचे गए हैं। इस युग का श्रेष्ठ कवि श्रीनाथ हैं। श्रीनाथ का समय लगभग ई. 1380-1470 है। वे प्रज्ञाशील महाकवि हैं। 'मरुत्तराट चरित्र', 'शालिवाहन सप्त शती', 'पंडिताराध्य चरित्र', 'श्रृंगार नैषधमु', 'भीम खंडमु', 'काशी खंडमु', 'हरविलासमु', 'धनुंजय विजयमु', 'क्रीडाभिराममु', 'पलनाटि वीर चरित्र', 'शिव रात्रि महात्यमु' आदि उनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं। कच्ची उम्र में ही उन्होंने 'मरुत्तराट चरित्र' लिखा है। उनकी 'शालिवाहन सप्त शती' हाल की गाथा सप्त शती का अनुकरण है। यह ध्वनि प्रधान श्रृंगार रचना है। 'श्रृंगार नैषधमु' इनकी अत्यंत प्रौढ़ रचना है। माना जाता है कि श्रीनाथ ने इसे अपने भरे यौवन में लिखा था। यह श्रीहर्ष के नैषध काव्य का तेलुगु अनुवाद है। यह आठ आश्वासों में लिखा गया 1300 गद्य-पद्यों का महाकाव्य है। महाभारत की नल-दमयंती कहानी इस का मूल है। यह मूल निकट अनुवाद होने पर भी श्रीनाथ ने कई संदर्भों में अनेक प्रक्षेपण किए हैं। इस काव्य को उन्होंने 'पेदकोमटी वेमा रेड्डी' के मंत्री 'मामिडी सिंगन' को समर्पित किया है।

श्रीनाथ ने सन् 1420 के आसपास 'हरविलासमु' काव्य लिखा है। यह उन्हें शिव भक्त के रूप में खड़ा करता है। इस काव्य में मुख्यतया चिरुतोंड नंबि कथा, गौरी कल्याण, शिव के दारुका वन विहार, समुद्र मंथन वृत्तांत, किरातार्जुनीयम आदि शिव लीलाएँ एवं शिव गाथाओं का संग्रह है। चिरुतोंड नंबि कथा पाल्कुरिकि सोमनाथ की सिरियाल की कथा जैसी है। 'बसव पुराण' का सिरियाल ही हरविलास का चिरुतोंड नंबि है। कालिदास के कुमार संभव की तारकासुर संहार इस में गौरी कल्याण के रूप में अनूदित है। कवि ने 'कुमार संभव' के पूरे काव्य को दो तीन आश्वासों में संक्षिप्त कर दिया है। दारुक वन विहार गौरी कल्याण का ही परिशिष्ट भाग है। समुद्र मंथन वृत्तांत शिव भगवान की जगत कल्याण दृष्टि का परिचायक है। श्रीनाथ ने इसे भी 'हरविलासमु' में जोड़ दिया है। इस में वर्णित 'किरातार्जनीयमु' कथा भारवि की 'किरातार्जुनीयमु' रचना का अनुवाद नहीं है। परन्तु महाभारत के अरण्य पर्व में चित्रित पाशुपतास्त्र प्रदान प्रसंग का संक्षिप्त रूप है।

'भीमखंडमु' भी श्रीनाथ की प्रौढ़ रचना है। 'भीमेश्वर पुराणमु' इस का दूसरा नाम है। यह छः आश्वासों का प्रबंध काव्य है। इसमें द्राक्षारामम भीमेश्वर की लीलाओं का रस भरित वर्णन है। स्कांद पुराण का गोदावरी खंड इस का मूल है। काव्य के अंत में हालाहल भक्षण तथा त्रिपुर संहार नामक दो शिव लीलाओं का चित्रण भी कवि ने किया है। 'क्रीडाभिराममु' श्रीनाथ का वीदि नाटक है। इसमें गोविंद मंचन शर्मा नामक एक ब्राह्मण युवक तथा रिट्टिम सेट्टि नामक वैश्य युवकों के द्वारा एक दिन में एक शिला नगर (वरंगल) की गलियों में देखे गए खेल - विनोदों का रस पूर्ण वर्णन है। यह तेलुगु का प्रथम उपहास काव्य माना जाता है। इसमें वरंगल का नगरीय जीवन अंकित है। 'काशी खंडमु' श्रीनाथ की एक और महत्वपूर्ण रचना है। यह स्कांद पुराण के काशी खंड का तेलुगु अनुवाद है।

श्रीनाथ ने इसे सात आश्वासों में रचा है। विंध्या पहाड़ का विद्रोह, अगस्त्य का काशी छोड़ना, उनकी दक्षिण यात्रा, कुमार स्वामि के द्वारा काशी की महिमा का वर्णन, व्यास का काशी छोड़ना आदि इस के मुख्य प्रसंग हैं। 'शिवरात्रि महात्म्यमु' श्रीनाथ की अंतिम रचनाओं में एक है। आश्रयदाताओं के लोप होने के बाद गरीबी में जीवन-शांति की खोज में श्रीनाथ ने श्रीशैषलमु की यात्रा की है। उस संदर्भ में यह काव्य लिखा गया है। इसका नायक परम कामुक सुकुमार है। वह इतना कामुक है कि अपनी बेटी के साथ उसने असभ्य व्यवहार किया। परम भ्रष्ट बनने के बाद भी शिव रात्री के दिन शिव दर्शन से उसे शिव लोक प्राप्त हुआ। यही इस में चित्रित है।

श्रीनाथ का 'पलनाटि वीर चरित्र' तेलुगु का प्रथम वीरगाथा काव्य है। इस में तेलगु जाति पौरुष का वर्णन है। यह द्विपद छंद में लिखा गया है। इसके कारण ही श्रीनाथ प्रजा कवि बने हैं। आंध्र में यह अत्यंत लोकप्रिय है। इसे 'पलनाटि भारतमु' (महाभारत की तरह) कहा जाता है। इसमें उस समय के आंध्रों के सामाजिक जीवन का सुंदर चित्रण हुआ है। पलनाडु के दो राज परिवारों के बीच हुए संघर्ष को इस में जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रीनाथ आशु कविता (चाटुवु) में भी प्रौढ़ कवि हैं। विविध संदर्भों में बड़ी संख्या में लिखे गए 'चाटुवु' पद्य उनके उपलब्ध होते हैं। इस रूप में श्रीनाथ जी का समृद्ध काव्य जीवन रहा है। जीवन काल में अत्यंत विलास जीवन जीनेवाले श्रीनाथ ने जीवन-संध्या में अत्यंत गरीबी को भोगा है। उनके सृजन संसार के अवलोकन से यही अनुभव होता है कि वे सचमुच ही 'कवि सार्वभौम' उपाधि के अधिकारी हैं।

पोतना श्रीनाथ युग का अन्यतम महाकवि हैं। सादा जीवन जीनेवाले पोतना ने अपने महा भागवत को श्रीराम को ही समर्पित किया है। वे राजाश्रय को भी ठुकरानेवाले अभिमानी कवि हैं। उनका समय सन् 1420-1480 माना जाता है। 'वीर भद्र विजयमु', 'भोगिनी दंडकमु', 'नारायण शतकमु', 'महा भागवत' आदि उनकी अमर कृतियाँ हैं। 'वीर भद्र विजयमु' उनकी प्रप्रथम काव्य रचना है। यह चार आश्वासों का काव्य है। कथा में पोतना ने नन्ने चोडुडु तथा पंडिताराध्य का ही ज्यादा अनुकरण किया है। 'भोगिनी दंडकमु' उनकी अप्रामाणिक रचना मानी जाती है। इसमें भोगिनी तथा सिंग भूपाल की प्रेम कहानी वर्णित है। 'नारायण शतकमु' पोतना का शतक काव्य है। 'नारायणा' मकुट के साथ इस के पद्य समाप्त होते हैं। इसमें कुल 103 पद्य संग्रहीत हैं। 'महा भागवत' उनकी अद्वितीय रचना है। इस रचना के कुछ स्कंधों के बारे में मतभेद है कि इन का प्रणयन पोतना ने नहीं बल्कि उनके जीवन काल में उन के शिष्यों ने या अन्य कवियों ने किया है। यह माना जाता है कि भागवत पुराण के बारह स्कंधों में 5, 6, 11, 12 को छोड़कर बाकी को पोतना ने लिखा है। 5 स्कंध को बोप्पराजु गंगन, 6 स्कंध को एर्चूरि सिंगन, 11, 12 स्कंधों को वेलिगंदल नारना ने लिखा है। दशावतार वर्णन, प्रहलाद चरित्र, अंबरीषोपाख्यान, गजेन्द्र मोक्षमु जैसे भक्तों के प्रसंग पोतना के द्वारा विरचित होना एक प्रकार से आन्ध्रों का भाग्य मान लेना चाहिए। ये प्रसंग आंध्र में अत्यंत लोकप्रिय हैं। भागवत वेदों, पराणों, ब्रह्म सूत्र, महाभारत आदि का प्रतिपदार्थ सार है। इसे मीठी एवं कमनीय तेलुगु भाषा में प्रस्तुत करके पोतना अमर हुए। 'महा भागवत' का नायक साक्षात विष्णु है।

महाभागवत विशुद्ध रूप से भक्ति काव्य है। भक्ति का पूर्ण निरूपण भागवत में देखा जा सकता है। अनेक भक्तों की जीवनियाँ इस में संग्रहीत हैं। ये सब ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति मार्ग का समर्थन करती हैं। विष्णु भक्ति का प्रतिपादन ही महा भागवत का मुख्य लक्ष्य है। वैष्णव धर्म के अनुयायी होते हुए भी पोतना परधर्म द्वेषी नहीं है। वे राम और कृष्ण में अंतर नहीं रखनेवाले अद्वैती हैं। तेलुगु में रचित इस भागवत ने चैतन्य प्रभु के पचास साल पहले ही कृष्ण तत्व का निरूपण प्रस्तुत किया है। 'महा भागवत' अद्वैत दृष्टि से ज्ञान की तथा भक्ति मार्ग के आचरण में आनंद की स्थापना करता है। 'महा भागवत' यह स्थापित करता है कि भागवत धर्म के आचरण से कुछ ने शुद्ध ज्ञान को प्राप्त किया तथा कुछ ने शुद्ध भक्ति का आचरण करके मोक्ष को प्राप्त किया। 'महा भागवत' में पाए जानेवाले उपाख्यान ही इस के साक्ष्य प्रमाण हैं। पोतना के द्वारा 'महा भागवत' के लिए रचित भक्ति के पद्य आज भी आंध्र में गूंजते सुनाई पड़ते हैं। संस्कृत महा भागवत का अनुसरण करते हुए भी पोतना ने अनेक संदर्भों में अपनी करीइत्रि प्रतिभा दिखाई है। इसी वजह से महा भागवत में स्थानीय संस्कृति एवं जीवन विधान से संबंधित अनेक प्रसंग बड़ी उदारता के साथ प्रक्षेपित भी हुए हैं।

श्रीनाथ युग के अन्य कवियों में जक्कना, अनंतामात्य, गौरना, मडिकि सिंगना, दग्गुपल्लि दुग्गना, पंचतंत्र कवि, पिल्लल मर्रि पिनवीर भद्रुडु, नंदि मल्लना, घंटा सिंगना, केरवि गोपराजु, कूचिराजु एर्रना, भैरव कवि, सूरना, कोलनि गणपति देवुडु, ताल्लपाक अन्नमाचार्य तथा अन्य ताल्लपाक कवि, विन्नकोटा पेद्धना, प्रौढ़ कवि मल्लना, विष्णु पुराण के कवि आदि उल्लेखनीय हैं। जक्कना ने 'विक्रमार्क चरित्र' नामक 8 आश्वासोंवाली मौलिक रचना लिखी है। यह ऐतिहासिक काव्य नहीं है और संस्कृत में प्रचलित विक्रमार्क चरित्र का अनुवाद भी नहीं है। इसमें विक्रमार्क के साहस और उदारता से संबंधित कहानियाँ संग्रहीत हैं। अनंतामात्य ने 'भोज राजीयमु' नामक 7 आश्वासोंवाला कथा काव्य लिखा है। भोज ऐतिहासिक पुरुष हैं। उन्होंने धारा नगर को राजाधानी बनाकर लाट देश का शासन किया। कई महाकवियों के आश्रयदाता हैं। परन्तु इस में इन का यह परिचय नहीं है।

सर्पटि नामक सिद्ध के द्वारा भोज को सुनाई गयी कहानियाँ इस में संग्रहीत हैं। गौरना ने 'नवनाथ चरित्र' तथा 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' नामक दो द्विपद काव्य लिखे हैं। 'नवनाथ चरित्र' नव शैव सिद्धों की महिमाओं का वर्णन करनेवाला 5 आश्वासों का द्विपद काव्य है। नवनाथों में मीननाथ अपार शक्तिशाली है तथा शिव-पार्वती का पुत्र हैं। गोरखनाथ इन का मुख्य शिष्य हैं। पुराण प्रसिद्ध हरिश्चन्द्र की कथा को काव्य वस्तु के रूप में ग्रहण करके काव्य लिखनेवाले कवियों में प्रप्रथम गौरना हैं। गौरना की कहानी स्कांद पुराण की कहानी के निकट है। इसमें नक्षत्रक पात्र गौरना का सृजन है। मडिकि सिंगन ने 11 आश्वासोंवाला 'पद्म पुराणोत्तर खंडमु' लिखा है। यह वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए लिखा गया काव्य है। इस में पद्म पुराण की कथाओं का वर्णन है। दग्गुपल्लि दुग्गना कवि श्रीनाथ जी का साला है। इन्होंने 'कांची महात्म्यमु', 'नासिकेतोपाख्यानमु' नामक दो काव्य लिखे हैं। विष्णु शर्मा के द्वारा संस्कृत में लिखी गयी पंच तंत्र की कहानियों को दूबगुंट नारायण, (ई. 1470) भैचराजु वेंकट नाथुडु, भानय कवियों ने तेलुगु में अनुवाद किया है। पिल्लल मर्रि पिनवीर भगुडु कवि ने 'श्रृंगार शाकुंतलम', 'जैमिनी भारतमु' नामक काव्य लिखे हैं।

3.4. प्रबंध युग या रायल युग

तेलुगु में प्रबंध युग या रायल युग (सन् 1500-1600) साहित्य की दृष्टि से स्वर्ण युग माना जाता है। श्रीनाथ युग की तरह इस में भी समृद्ध साहित्य लिखा गया है। श्री कृष्ण देव रायलु जैसे यशस्वी राजाओं के आश्रय में साहित्य पुष्पित एवं पल्लवित हुआ है। श्री कृष्ण देव रायलु के दरबार में। जो 'भुवनविजयमु' कहलाता है, अष्ठ दिग्गज कवि हुआ करते थे। श्री कृष्ण देवरायलु स्वयं कवि, उदार पोषक, साहित्य - विद्या- विनोद में असीम अभिरुचि रखनेवाले हैं। अपने दरबार में आठ महाकवियों को रखकर उन्होंने साहित्य- सरस्वती की अनुपम सेवा की है। अष्ठदिग्गज कवियों में अल्लसानि पेद्धना, नंदि तिम्मना, पुत्तेटि राम भद्रुडु, मादय गारि मल्लना, धूर्जटी, तेनालि रामकृष्णुडु, कंदुकूरी रुद्र कवि, राधा माधव कवि (चिंतलापूडि एल्लना) की गिनती की जाती है।

अल्लसानि पेद्धना (ई. 1470-1540) सभी से दिग्गज कवि हैं। 'मनुचरित्र' नामक अपने काव्य को इन्होंने अपने आश्रयदाता श्रीकृष्ण देवरायलु को समर्पित किया है। वे रायलु के घनिष्ट सखा भी थे। 'हरिकथा सारमु' नाम से एक और रचना इनके नाम से अंकित है। 'मनु चरित्र' छे आश्वासों का प्रबंध काव्य है। इस में वरूधिनी और प्रवराख्य की कहानी वर्णित है। नंदि (मुक्कु) तिम्मना भी अष्ठ दिग्गज कवियों में एक हैं। रायल के साथ इन का भी घनिष्ट संबंध था। इन्होंने अपनी रचना 'पारिजातापहरणमु' श्रीकृष्ण देवरायलु को ही समर्पित किया है। यह पाँच आश्वासों का श्रृंगार प्रबंध काव्य है। 'वाणि विलास' नाम से इन की एक और रचना उपलब्ध होती है। 'पारिजातापहरणमु' में श्रीकृष्ण और सत्यभामा की कहानी वर्णित है। श्री कृष्ण देवरायलु और उनकी पत्नी तिरुमल देवि के जीवन में घटित घटना के

साथ भी इसे जोड़ा जाता है। वस्तु की दृष्टि से इस काव्य का मूल प्रेरणा सोत संस्कृत 'हरिवंश' काव्य है। हरिवंश में यह बारह अध्यायों में वर्णित है। रस और भाव के औचित्य के अनुसार तिम्मना ने मूल कथा में कई परिवर्तन किए हैं। अमलिन एवं निरहंकार प्रेम की शिक्षा सत्यभामा को देना ही तिम्मना का लक्ष्य है। इसलिए मूल में वर्णित पुण्यका व्रत को तिम्मना ने विस्तार दिया है।

'राजशेखर चरित्रमु' मादया गारि मल्लना की रचना है। रायल के दरबार के अष्ठदिग्गज कवियों में ये भी एक हैं। 'राज शेखर चरित्रमु' में रायल की कोई प्रशंसा दिखाई नहीं पड़ती है। यह भी माना जाता है रायल के दरबार में पहुंचने के पहले ही कवि ने यह काव्य लिखा होगा। अष्ठदिग्गज कवियों में 'धूर्जटी' का भी विशिष्ट स्थान है। 'कालहस्ति महात्म्यमु' तथा 'काल हस्ति शतकमु' इनकी रचनाएँ हैं। धूर्जटी परम शिव भक्त हैं। 'कालहस्ति महात्म्यमु' क्षेत्र महिमा का वर्णन करनेवाला प्रबंध काव्य है। इस में श्रीकालहस्ति क्षेत्र में विराजमान शिव की अनेक लीलाएँ विविध कथाओं के माध्यम से वर्णित हैं। प्रत्येक आश्वास के आदि भाग में ही उस आश्वास की कथा का परिचय प्रस्तुत करना इस की मुख्य विशेषता है। अष्ठदिग्गज कवियों में तेनाली रामकृष्ण कवि (ई. 1485- 1575) विशिष्ट स्वभाव के हैं। उनको 'विकट कवि' भी कहा जाता है। ये बहुत ही प्रबुद्ध हैं। समयस्फूर्ति तथा हास्योक्ति इनकी अन्यतम विशेषताएँ हैं। ये आरंभ में शिव भक्त थे। परन्तु बाद में वैष्णव धर्म को स्वीकार किया है। 'उद्भटाराध्या चरित्र' उनका शैव काव्य है। बाद में इन्होंने वैष्णव धर्म को स्वीकार करके 'पांडुरंग महात्म्यमु', 'हरिलीला विलासमु', 'घटिकाचल महात्म्यमु' आदि रचनाएँ लिखी हैं। 'उद्भटाराध्या चरित्र' तीन आश्वासोंवाला काव्य है। इसमें पाल्कुरिकि सोमनाथ के बसव पुराण के सातवें आश्वास वर्णित उद्भट की कथा का अनुसरण है।

'पांडुरंग महात्म्यमु' उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। यह पाँच आश्वासोंवाला प्रबंध काव्य है। इसका मूल स्रोत 'स्कांद पुराण' में वर्णित कथा है। भैमिनी नदी के तट पर पंडरी क्षेत्र में स्थित पांडुरंग देव की महिमा का वर्णन इस में किया गया है। पंडरी क्षेत्र के पांडुरंग देव की महिमा के निरूपण के लिए इस में कवि ने पुंडरीकुनि कथा, निगमशर्मोपाख्यान, श्रीकृष्णावतारा चरित्र, श्री राधा देवी चरित्र, कौआ, हंस, सांप तथा तोते के मोक्ष प्राप्त करने की कथा, सुशील नामक पतिव्रता की कथा, अपने भाईयों के साथ युधिष्टि के पांडुरंग क्षेत्र के दर्शन करने की कथा, सुशर्मोपाख्यान, आयुत नियुत मुनि कुमारों का चरित्र आदि कथाओं को श्रृंखला में जोड़ा है। इन नौ कथाओं के माध्यम से पांडुरंग के प्रति भक्ति का निरूपण भी किया गया है।

श्री कृष्ण देवरायलु स्वयं अच्छे कवि हैं। तेलुगु भाषा तथा साहित्य के प्रचार प्रसार में उन्होंने अद्वितीय कार्य किए हैं। सात आश्वासोंवाले 'आमुक्तमाल्यदा' उनकी प्रबंध - प्रतिभा का जीवंत प्रमाण है। इसमें विष्णुचित्त एवं गोदादेवी (आंडाल) की कहानी वर्णित है। गोदा साक्षात रंगनाथ से प्रेम करती है और उन्हीं से विवाह करने को ठान लेती है। अपने को वह रंगनाथ को समर्पित कर लेती है। गोदादेवी तमिल के आलवार कवियों में एक मानी जाती है। जिन्होंने 'नालाइर दिव्य प्रबंधम' लिखा है। प्रबंध युग के एक और कवि पिंगली सूरना ने 'राघव पंडवीयमु' नामक एक विशिष्ट काव्य लिखा है। यह एक द्वयार्थी काव्य है। इसमें एक साथ राम कथा तथा महाभारत कथा वर्णित हुई है। एक ही पद्य में दोनों भावों को संप्रेषित करके कवि ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। 'कलापूर्णोदयमु', 'गिरिजा कल्याणमु', 'गरुडा पुराणमु', 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

विजय नगर साम्राज्य के पतन के बाद यानी लगभग ई. 1565 के आश्रय दाताओं के अभाव में तेलुगु साहित्य लेखन क्षेत्र आंध्र से सुदूर दक्षिणांध तंजावूर, मधुरा, जिंजि, मैसूर, पुदुक्कोटा में बदल गया। विजय नगर साम्राटों के होते

ही इन केन्द्रों में तेलुगु नायकों को सामंतों के रूप में भेजा गया था। संगीत, कला, साहित्य कोविद उनके साथ बस गये थे। विजय नगर साम्राज्य का पतन तथा मुसलमान राजाओं के शासन काल में अननुकूल वातावरण में संगीत, साहित्य आदि क्षेत्रों के कलाकार इन केन्द्रों के सामंतों के आश्रय में जा बसे। वहाँ इसलिए तेलुगु साहित्य का विकास हुआ है। इसलिए तेलुगु साहित्य के इस युग को दक्षिणांध्र युग कहा जाता है। यद्यपि इस युग में आंध्र प्रांत में भी थोड़ा बहुत तेलुगु साहित्य रचा गया वह मात्रा एवं विविधता की दृष्टि से दक्षिणांध्र साहित्य की तुलना में गौण ही है।

दक्षिणांध्र युग का साहित्य 17, 18 वीं सदियों में लिखा गया साहित्य है। प्राचीन परंपराओं का अनुसरण करते हुए अष्टादश वर्णनों के साथ इस युग में अनेक प्रबंध काव्य रचे गए हैं। गीत, नृत्य आदि नाट्य रूपों का समावेश भी काव्य में किया गया। तंजावूर के नायक राजाओं ने यक्षगानों को विशेष प्रोत्साहन दिया। इस युग में ज्यादा श्रृंगार प्रबंध ही रचे गए हैं। रघुनाथ नायक के 'रामायणमु', 'वाल्मीकी चरित्र', 'श्रृंगार सावित्रि', चेमकूर वेंकट कवि के 'विजय विलासमु', 'सारंगधर चरित्र', चेंगल्व कवि का 'राज गोपाल विलासमु', रंगाजम्मा के 'दास विलास', 'उषा परिणयमु' आदि इस युग के प्रसिद्ध श्रृंगार प्रबंध हैं। इन के अतिरिक्त मुद्धुपलनि का 'राधिका सांत्वनमु', कामेश्वर कवि का 'सत्यभामा सांत्वनमु', वेंकट कृष्णप्प नायक का 'राधिका सांत्वनमु' आदि इस युग के मोह श्रृंगार काव्य हैं। इस युग में कुछ द्विपद काव्य भी रचे गए हैं। तिरुवेंगल कवि का 'चोक्क नाथ चरित्र', रघुनाथ नायक के 'अच्चुताभ्युदयमु', 'नल चरित्र', विजय राघव के 'पादुका सहस्रमु', 'मोहिनी विलासमु', वेंकट कवि का 'बाल रामायणमु', दर्बा वेंकट गिरी कवि का 'रुक्मांगद चरित्र' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इस युग के कृष्णध्वरी के द्वारा 'नैषध पारिजातीयमु', नेल्लूरि वीर राघव कवि के द्वारा 'याधव पांडवीयमु', एल्कूचि बाल सरस्वती के द्वारा 'राघव यादव पांडवीयमु' नामक द्वयार्थी काव्य भी रचे गए हैं। इस युग में बड़ी संख्या में वचन काव्य भी रचे गए हैं। कामेश्वर कवि कृत 'धेनु महात्म्यमु', चेक्कनाथ कृत 'श्रीरंग माघ महत्म्यमु', वेंकट कृष्णप्प कृत 'जैमिनी भारतमु', 'सारंगधर चरित्र', श्याम राय कवि कृत 'रामायणमु', वीर राजु कृत 'वचन भारतमु' इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इस युग में बड़ी मात्रा में शास्त्रीय, अलंकार शास्त्रीय, संगीत शास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन भी हुआ है। नुदुरुपाटि वेंकन्न कृत 'रघुनाथीयमु', आलूरी नरसिंह कवि कृत 'नंदराज यशोभूषणमु' आदि लोकप्रिय अलंकार शास्त्र ग्रंथ हैं तो बद्धेवीटि दत्तप्प कृत 'गणित दीपिका' गणित शास्त्र के रूप में वेल्लूरी शिवराम कवि कृत 'काम कला निधि' काम शास्त्र के रूप में बेलगपूडि कृष्णप्पा कृत 'गौलिका शास्त्रमु' छिपकली बोलने के शास्त्र के रूप में नव नप्पा कृत 'खड्ग लक्षण शिरोमणी' तलवार शास्त्र के रूप में लोकप्रिय हुए हैं। 'सांब निघंटुवु', 'शब्द रत्न समन्वयमु, 'शब्दार्थ संग्रहमु', 'आंध्र भाषाणीयमु' आदि शब्द कोशों का निर्माण भी इस युग में हुआ है। पुरुषों के साथ-साथ मधुर वाणी, राम बद्रांबा, कृष्णा जी, रंगाजम्मा, मुद्धुपलनि आदि कवइत्रियों ने काव्य लिखकर इस युग में सम्मान प्राप्त किया है।

दक्षिणांध्र युगीन तेलुगु साहित्य विविध मुखी है। श्रृंगार प्रबंधों के साथ-साथ भक्ति रसात्मक तथा वेदांत प्रधान काव्य भी इस युग में रचे गए हैं। फिर भी तेलुगु आलोचकों की दृष्टि में प्रबंध युग की तुलना में दक्षिणांध्र युगीन साहित्य उदात्त एवं साहित्यिक मूल्यों की दृष्टि से क्षीण साहित्य ही है। सामयिक सामंतों की पतनावस्था, विलासिता, सामाजिक जीवन की निष्क्रियता एवं व्यसनलोलुपता इस के लिए जिम्मेदार माना जाता है।

3.5. पद और शतक साहित्य

दक्षिणांध्र युगीन साहित्य एवं क्षीण युग के साहित्य के बीच में तेलुगु में दो प्रमुख साहित्यिक धाराएँ दिखाई पड़ती हैं। 1.पद साहित्य 2. शतक साहित्य। तेलुगु में समृद्ध पद साहित्य (गीति काव्य) प्राप्त होता है। गीति तत्व एवं संगीत तत्व के मिश्रण से काव्य रचनेवालों को तेलुगु में 'वाग्गेयकार' कहते हैं। मात्रा भेद के अनुसार इन्हें पदमु, संकीर्तनमु, कृति आदि नामों से पुकारते हैं। तेलुगु में श्री वेंकटेश्वर के परम भक्त श्री अन्नमाचार्य पद कविता पितामह माने जाते हैं। इन के पदों को 'संकीर्तन' नाम से पुकारते हैं। क्षेत्रय्या के पदों में गीति तत्व की प्रधानता है। इनकी रचना 'क्षेत्रय्या पदालु' है। उसी रूप में त्यागराजु में गीति तत्व की तुलना में संगीत तत्व की प्रधानता है उनकी रचनाओं को इसलिए 'त्यागराजु कृतुलु' कहा जाता है। ये तीनों ही महा पद कवि अपने पदों के लिए आंध्र भर में लोकप्रिय हैं। अन्नमाचार्य एवं क्षेत्रय्या ने क्रमशः श्री वेंकटेश्वर तथा श्रीकृष्ण का कीर्तन किया है तो त्यागराजु ने राम का। आज भी इन के गीत या पद आंध्र भर में गाए जाते हैं।

तेलुगु में शतक काव्यों की भी समृद्ध परंपरा है। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं से यह परंपरा तेलुगु में आयी है। लगभग 12 वीं सदी से ही शतकों की रचना होने पर भी 16 वीं सदी - 18 वीं सदी के बीच ही इन का पूर्ण विकास हुआ है। 100 से लेकर 108, 116, तथा 300, 500, 700 संख्याओं में पद्यों के साथ ये शतक काव्य रचे गए हैं। तेलुगु शतकों के अंत में कवि का नाम या कवि के द्वारा प्रयुक्त किसी विशिष्ट शब्द का प्रयोग मिलता है। तेलुगु में इसे 'मकुटमु' कहा जाता है जैसे सुमती !, भास्करा !, वेमा ! आदि शतकों के पद्य ज्यादातर मुक्तक ही हैं। शतक पद्य भावों से भरे रहते हैं चंपक माला, आटवेलदी, कंद या सीस छंद में लिखे जाते हैं। भक्ति, नीति, श्रृंगार, हास्य, अधिक्षेप आदि विषयों से संबंधित शतक काव्य तेलुगु में प्राप्त होते हैं। शिव, विष्णु, देवी, सत्यसाई, ईसा मसीहा से संबंधित भक्ति शतक, 'वेमन शतकमु', 'सुमती शतकमु', 'भास्कर शतकमु', 'कुमारी शतकमु' आदि नीति शतक है। इनके अलावा अधिक्षेप या हास्य-व्यंग्य शतक और श्रृंगार शतक भी हैं। इनमें से अधिकांश आंध्र में अधिक लोकप्रिय हुए हैं। खास कर प्रजा कवि माने जानेवाले वेमना जैसे कवियों के शतक पद्य बच्चों से लेकर बूढ़ों तक लोकप्रिय हैं। जीवन के अनेक संदर्भों में इन को दृष्टांत के रूप में दिया जाता है। वेमन शतक के पद्य सरल सुबोध भाषा में तथा जीवनानुभव से प्राप्त विविध सादृश्य मूलक उदाहरणों एवं उपमाओं से भरे रहने के कारण जनता में अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

दक्षिणांध्र चोल, पांड्य राजाओं के पतन से बचा कुचा तेलुगु साम्राज्यों का पूर्ण रूप से पतन हो गया। आंध्र राज्य अब छोटे छोटे सामंतों में बंट गया। इन छोटे-छोटे सामंतों व जमींदारों की साहित्य एवं कलाओं के प्रति कोई उच्च दृष्टि के अभाव में तथा विलासिता की ओर उन के झुकाव के कारण इस युग का साहित्य कांतिहीन हो गया। अनुकरण तथा पुनरावृत्तियों से इस युग का साहित्य साहित्यिक मूल्यों से भी वंचित हो गया। सामाजिक हित तथा : राष्ट्रीय हित के प्रति वैचारिकता के अभाव के कारण भी साहित्य का सामाजिक प्रयोजन भी मिट गया। गुलामी मानसिकता में दबे जमींदार व सामंतों की प्रशंसा में कभी विलासी काव्य रचना हुई तो कभी इन आश्रयदाताओं के कोप के कारण विलाप काव्य रचना हुई।

काव्य के अभिव्यंजना पक्ष के संदर्भ में भी प्रयोग करने की कोई इच्छा कवियों में दिखाई नहीं पड़ती है। इस रूप में साहित्य अपनी संपूर्ण कांति को खोकर कमजोर व क्षीण पड़ गया था। इसी कारण से इस युग को क्षीण युग (सन् 1775-1875) कहा गया। कुछ आलोचकों ने दक्षिणांध्र युग एवं आधुनिक युग के बीच के इस काल को 'संधि युग' भी कहा है। उनका विचार है कि आधुनिक युग में सर्वथा नवीन रूप में विकसित होने के पहले प्राचीन परंपरा से कट

कर यह पतनोन्मुख हुआ। अतः इस युग को संधि युग कहना उचित है। कंकंटि पाप राजु, पुष्पगिरि तिम्मना, कूचिमंचि तिम्म कवि, दिट्ट कवि नारायण कवि जैसे कवि इस युग में हुए। कंकंटि पाप राजु का 'उत्तर रामायणमु' लोकप्रिय महा काव्य। रामायण के उत्तर कांड की कथा के आधार पर यह लिखा गया है। पष्पगिरि तिम्मना ने सात आश्वासोंवाला 'समीर कुमार विजयमु' नामक पुराण काव्य लिखा है। हनुमान से संबंधित लोकप्रिय सारी कथाएँ इस में संग्रहीत हैं। 'कवि सार्वभौम' उपाधि से शोभित कूचि मंचि तिम्म कवि ने 'ऋक्मिणी परिणयमु', 'राज शेखर विलासमु', 'सिंहाचल महात्म्यमु', 'नील सुंदरी परिणयमु', 'अच्च तेनुगु रामायणमु', 'सारंगधर चरित्रमु', 'सकल लक्षण सार संग्रहमु', 'रसिक जन मनोभिराममु', 'शिव लीला विकासमु' आदि काव्यों को लिखा है। दिट्ट कवि 'नारायण' कवि ने तीन आश्वासोंवाला 'रंगनाथ चरित्रमु' नामक ऐतिहासिक प्रबंध लिखा है। इसमें बोब्बिलि के सामंत रावु रंगाराव तथा अंग्रेज बुस्सी दोरा के बीच में हुए युद्ध का वर्णन है।

भारत में अंग्रेजों का आगमन तथा तेलुगु साहित्य के विकास में उनके योगदान को भी इस युग में देखा जा सकता है। कुल मिलाकर आगे आनेवाले आधुनिक युग के शुभारंभ के लिए आवश्यक सभी अवलक्षण इस युग के साहित्य में देखा जा सकता है।

3.6. सारांश

दक्षिण भारत की भाषाओं में तेलुगु भाषा का स्थान विशिष्ट है। तेलुगु भाषा का साहित्य समृद्ध और युगीन परिस्थितियों के अनुकूल रचा गया है। प्राचीन तेलुगु साहित्य में विभिन्न प्रकार के साहित्य से लेकर प्रबंध युग की 16वीं शताब्दी के अंत तक के काल में जितने भी लेखक साहित्य का लेखन कार्य किये वे सब साहित्य में अपनी-अपनी शैली का प्रदर्शन किया था। कवित्रयों ने भागवता अनुवाद कार्य किया तो श्रीनाथ महा कवि श्रृंगार कविताओं के साथ-साथ चाटु पद भी लिखे थे। रायल युग तो तेलुगु साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग का दर्जा पाया गया है। तेलुगु साहित्य के विशिष्ट और वैविध्य प्रक्रिया पद और शतक साहित्य है। 17वीं शताब्दी में पद और शतक साहित्य का विकास हुआ। इन सभी बिन्दुओं को मध्य नजर रखते हुए प्राचीन तेलुगु साहित्य का युग और प्रवृत्तियों के बारे में हम इस इकाई में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाये हैं। इसके साथ-साथ अगले इकाई में आधुनिक तेलुगु साहित्य के प्रेरणा स्तोत्र के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.7. बोध प्रश्न

1. प्राचीन तेलुगु साहित्य के बारे में लेख लिखिए।

2. प्राचीन तेलुगु साहित्य के युग-प्रवृत्तियों पर सारगर्भित लेख लिखिए।

3. प्रबंध युग के बारे में लिखिए।

4. श्रीनाथ युग पर एक छोटा सा लेख लिखिए।

3.8. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

डॉ. एम. मंजुला

4. आधुनिक तेलुगु साहित्य के प्रेरणा स्रोत

4.0. उद्देश्य

पिछले दो अध्यायों में हम तेलुगु साहित्य के बारे में, युग प्रवृत्तियों के बारे में जान चुके है तो इस इकाई में हम आधुनिक तेलुगु साहित्य के प्रेरणा स्रोतों के बारे में जान पायेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम आधुनिक तेलुगु साहित्य का परिवेश, राजनीतिक संदर्भ, स्वतंत्रता आन्दोलनों में आन्ध्रों की भूमिका, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज सांस्कृतिक संदर्भ आदि सभी अंशों के बारे में जान पायेंगे। हिन्दी और तेलुगु भाषाओं पर इन सभी परिस्थितियों के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना

4.2. आधुनिक तेलुगु साहित्य का परिवेश

4.3. स्वतंत्रता आन्दोलन में आन्ध्रों की भूमिका

    4.3.1. सामाजिक संदर्भ

    4.3.2. सुधारवादी आन्दोलन

    4.3.3. ब्रह्मा समाज

    4.3.4. आर्य समाज

    4.3.5. थियोसाफिकल सोसाइटी

    4.3.6. रामकृष्ण परमहंसा तथा विवेकानंद जी का प्रभाव

    4.3.7. प्रार्थना समाज

    4.4. आन्ध्र में समाज सुधार आन्दोलन

4.5. सारांश

4.6. बोध प्रश्न

4.7. सहायक ग्रंथ

4.1. प्रस्तावना

आधुनिक तेलुगु साहित्य में 'आधुनिक' शब्द काल बोध एवं प्रवृत्ति बोध करानेवाला शब्द है। साहित्योतिहास के संदर्भ में आधुनिक शब्द का यह अर्थ ग्रहण अत्यधिक सतही स्तर का माना जा सकता है। क्यों कि इसके अनुसार 10 वीं सदी की रचना से 11 वीं सदी की रचना आधुनिक है और अर्वाचीन है। परन्तु 11 वीं सदी की

रचनाओं को आधुनिक रचनाओं के रूप में मानना उचित नहीं है। साहित्य के स्वभाव व प्रवृत्ति में आये बदलाव के आधार पर ही 'आधुनिक युग' या आधुनिक साहित्य' का नामकरण किया गया है। प्रश्न उठता है कि आधुनिक साहित्य का स्वभाव या प्रवृत्ति अपने पूर्व युग क्षीण युग के स्वभाव या प्रवृत्ति से किन-किन मामलों में भिन्न थी। भिन्नता की मात्रा और स्वरूप क्या था। अर्थात आधुनिक साहित्य को आधुनिक कहने के पीछे स्वभावगत एवं प्रवृत्तिगत बोधक तत्व क्या है और ये प्रवृत्तिगत बोधक तत्व अपने पूर्व क्षीण युग से किस मात्रा में तथा किस रूप में भिन्न हैं।

19 वीं सदी के भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति का यह ठकराव विस्फोटात्मक परिणाम लाया। उसने साहित्यिक प्रवृत्ति एवं साहित्यिक स्वभाव में आमूल परिवर्तन ही कर दिया। इस ठकराव ने जंग लगी सभी पुरानी परंपराओं को तोड़ दिया। एक नवजागरण को साहित्य में भर दिया। नवचेतना एवं नव जागरण से भरे इस साहित्य को आधुनिक साहित्य कहना इसलिए ज्यादा समीचीन लगता है। यह विस्फोटात्मक परिणाम 19 वीं सदी का अपना ही है और किसी भी युग में इस स्तर का परिणाम नहीं देखा जा सकता है।

4.1. आधुनिक युगीन तेलुगु साहित्य का परिवेश

साहित्य सामयिक जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है। सामयिक जीवन का सही व समग्र प्रतिबिंब साहित्य में देखा जा सकता है। इसका कारण यही है कि साहित्यकार अपने युग से और आस पास के जीवन से परे नहीं हो सकता है। जीवन और समाज के साथ दायित्व पूर्ण संबंध रखनेवाला साहित्यिकार अपने साहित्य को जीवन से अलग नहीं रख सकता है। साथ ही परिवेशगत जीवन से ही अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करता है। इसलिए साहित्य जन जीवन का सच्चा आईना बन जाता है। परिवेश के साथ साहित्य के इस अटूट व अनिवार्य संबंध के कारण ही साहित्य के विश्लेषण व उस की सही पहचान के लिए सामयिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक हो जाता है।

परिस्थितियों के आकलन से न केवल साहित्य को समझ सकते हैं बल्कि उसकी गहराइयों में छिपे जीवन की सच्चाइयों को भी समझ सकते हैं किसी भी साहित्यकार के साहित्य का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही सही व सफल रूप में किया जा सकता है। क्यों कि साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होता है। अपने चारों तरफ की परिस्थितियों से प्रभावित होना और उन्हें प्रभावित करना भी एक सहज धर्म है। परन्तु महान साहित्य का युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए भी उनसे आवश्यक प्रेरणा मात्र ग्रहण करके अपने मौलिक चिंतन, विश्वास तथा मान्यताओं के अनुसार साहित्य रचता है। साहित्य और साहित्यकार संबंधी इन मान्यताओं को किसी भी युग के साहित्य पर लागू करके देखा जा सकता है।

तेलुगु का आधुनिक युगीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। लंबी समृद्ध परंपरा को रखनेवाला तेलुगु साहित्य का आधुनिक युग में आते-आते मानो कायाकल्प ही हो गया। एक बार साहित्यिक श्रेष्ठ शिखरों पर पहुंचनेवाला तेलुगु साहित्य अचानक 18 वीं 19वीं शताब्दियों के बीच में साहित्यिक मूल्यों के उत्तुंग शिखरों से गिर गया। इस युग के साहित्य को इसलिए तेलुगु साहित्येतिहासकारों ने 'क्षीण युग' कहा है। बड़े-बड़े राजाओं एवं उनके राज्यों के पतन से शेष छोटे-छोटे सामंत जमींदार ज्यादा विलासी व भोगवादी बन गये थे। रूप और संगीत आदि ललित कलाओं के प्रति उनकी धारणाएँ बदल गयीं। वे भी भोग - लालसा के साधन मात्र रह गये। पूर्व कृतियों का अनुकरण करना चोरी करना भी साहित्य के क्षेत्र में शुरू हो गया था। साहित्य अपने सभी मानवीय मूल्यों से वंचित रह

गया था। परिणाम स्वरूप पूर्व युगों की तरह इस युग में कोई श्रेष्ठ साहित्य लेखन संभव नहीं हो सका था। तेलुगु के आधुनिक युगीन साहित्य के पूर्व युग की यही पतनोन्मुख पृष्ठभूमि रही है। इस के विपरीत अनेक सुधार नीतियों, ऊंचे आदर्शों एवं मूल्यों के साथ आधुनिक युग शुरू हुआ।

तेलुगु आधुनिक युग के साहित्यिक लेखन के पीछे उस युग की परिस्थितियों का प्रभाव ज्यादा रहा है। परिस्थितियों के बुनियादी फेर बदल के कारण ही तेलुगु में अपने पूर्व युगों से भिन्न साहित्य लेखन शुरू हो गया। गद्य में स्वतंत्र लेखन व गद्य की अनेक नयी विधाओं का विकास तथा काव्य के क्षेत्र में अनेक काव्यांदोलन इस तथ्य के साक्ष्य प्रमाण हैं। यह कहना ज्यादा उचित है कि तेलुगु साहित्य के आधुनिक युगीन साहित्य रचना के लिए उस युग की परिस्थितियाँ ही ज्यादा जिम्मेदार हैं। तेलुगु में अभूत पूर्व साहित्य लेखन के लिए जिम्मेदार इन परिवेशगत विशेषताओं का आगे विश्लेषण किया जा रहा है। आधुनिक युग के आरंभ के पहले आंध्र प्रांत में अंग्रेजों का शासन कायम हो चुका था। भारतीय जीवन अपने समूचे में उस शासन से प्रभावित था।

4.2. स्वतंत्रता आंदोलन में आन्ध्रों की भूमिका

अंग्रेजों के शोषण दमन नीति से आंध्र भी अछूता नहीं रहा। भारत का कच्चा माल अपना देश ले जाकर फिर बने पक्केमाल को बेचने के लिए अंग्रेजों ने भारत को अपना बाजार बनाया। भारतीय अन्य भू भागों के साथ-साथ आंध्र भी अंग्रेजों की इस नीति का शिकार हुआ है। आंध्र में इस नीति के कार्यान्वयन के लिए अंग्रेजों को कुछ समय लगा। क्यों कि आंध्र प्रांत के छोटे-छोटे राजा, जमींदार, पालेगांड्लु आदि सन् 1838 तक अंग्रेजों से संघर्ष करते रहे। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे उनका दमन करके धोखे से उन्हें हराकर उन से समझौते किये। 1838 के बाद ही आंध्र में अंग्रेजों का शासन स्थिर हो सका। लगभग उसी समय भारत के अन्य भूभागों की तरह आंध्र में भी राष्ट्रीयता का बीजवपन हुआ था। भारत भर अभिमान तथा भारतीय एकता की भावना जागृत हुई थी। परिवेश को अच्छी तरह परखनेवाली अंग्रेज सरकार आगे आनेवाले खतरे को भांप गयी थी। इसलिए वह नयी चाल चलने लगी थी।

सरकारी नौकरी का मोह दिखाकर तथा सुधारवादी व सुविधावादी साधनों को देकर अंग्रेज सरकार भारतीयों में फूट डालना चाहती थी। इसी के परिणाम स्वरूप सन् 1900 तक मद्रास से विशाखापट्टणमु, गुंतकल से विजयवाडा, मद्रास से मुंबई, तिरुपति से काटपाडि तक रेल सेवाएँ शुरू की गयीं। आंध्र प्रांत में लगभग 7000 मील सड़कें भी बनायी गयीं। इस से भारतीयों की मानसिकता थोड़ी बदली। इसके साथ ही अंग्रेज सरकार ने आंध्र प्रांत में कालेजों की स्थापना भी करायी। सन् 1855 में स्थापित मद्रास विश्वविद्यालय के द्वारा आंध्र के उच्च वर्ग के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सन् 1853 में आंध्र के गाजुला नरसिंहा शेट्टी ने 'मद्रास नेटीवीस असोसियेषन' की स्थापना की। सन् 1884 में पी. रंगय्या नायडु के नेतृत्व में 'मद्रास महाजन सभा' की स्थापना हुई। इन दोनों ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद पनप्पाकम आनंद चार्युलु नापति सुब्बाराव, केशव पिल्लै, पी. रंगस्वामी नायुडु, गंजाम वेंकट रत्नम आदि ने उस में सक्रिय भाग लिया। तिलक के द्वारा प्रेरित स्वराजय आंदोलन से गाडिचेर्ला हरिसर्वोत्तम राव जैसे लोग प्रभावित हुए। उन्होंने स्वराज्य नाम से एक पत्रिका भी चलायी। अंग्रेज शासन के विरोध में लेख लिखे। परिणाम स्वरूप उन्हें तीन साल की सजा मिली। इसी के साथ विदेशी वस्तु बहिष्कार आंदोलन भी चला। श्री राम शास्त्री, सेतु श्रीनिवास राव, कोटा वेंकटा चलम, कोन सीतारामा राव आदि ने आंध्र में इस आंदोलन का नेतृत्व किया।

गांधी जी के अहिंसावादी आंदोलन के साथ-साथ आजादी के लिए क्रांतिकारी आंदोलन भी हुए। उनमें आंध्र गदर आंदोलन मुख्य है। यह सशस्त्र आंदोलन था। उच्च शिक्षा के लिए विदेश गये विद्यार्थियों के द्वारा इस की स्थापना की गयी। इस में दर्शि चेंचय्या, बी. एन. शर्मा, पी. जे. वेंकय्या आदि ने भाग लेकर अनेक साहस कार्य किए। इस 'गदर' आंदोलन से संबंधित मामलों में 28 लोगों को फांसी की सजा दी गयी। बाद में दर्शि चेंचय्या ने कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होकर अनेक समाज सुधारवादी काम किए। उन्होंने वैश्यों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने को बाध्य किया।

सन् 1942 जुलाई के पहले आंध्र के कांग्रेस ने अपने कार्यक्रमों की घोषणा की थी। उन में निषेध आज्ञाओं का उल्लंघन, वकीलों एवं विद्यार्थियों के द्वारा अपने-अपने कामों को छोड़ना, मजदूरों के द्वारा आंदोलन चलाना, रेलों को रोकना, तार इत्यादि को काटना, सहायता का निराकरण करना आदि मुख्य हैं। सरकार ने इस आंदोलन को रोकने की कोशिश की है। टंगुटूरी, तेन्नेटि विश्वनाथम, कालेश्वर राव, कला वेंकट्राव, वी. वी. गिरी, बेजवाडा गोपाल रेड्डी, कल्लूरी सुब्बा राव, अनंतशयनम अयंगार, अल्लूरि सत्य नारायण राजु, नीलम संजीव रेड्डी, के. लिंगराजु आदि नेताओं को गिरफतार किया गया। इससे गुस्सैल जनता ने सरकार के विरोध में हिंसा से काम लिया। सभाओं के साथ-साथ जलाने जैसे कार्य भी किए। सन् 1943 में वैसराय लार्ड बेवेल ने इस को रोकने की कोशिश की। इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में आंध्र प्रांत ने अपनी बलवती भूमिका निभायी है। आजादी के बाद आन्ध्र में कांग्रेस तथा कम्युनिस्ट पार्टियाँ प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के रूप में उभरकर आयीं।

ये सारी राजनीतिक घटनाओं तथा परिस्थितियों ने आधुनिक युगीन तेलुगु साहित्यकारों को प्रभावित किया था। सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन, नैतिक बल, न्यायबद्ध प्रयत्नों के बावजूद भारत का स्वतंत्रता संग्राम कभी-कभी असफल प्रतीत होने लगा। जलियनवाला बाग के हत्या कांड, देश भक्तों को निर्ममता से कुचल डालना आदि घटनाओं ने आंध्रवासियों को भी कुछ क्रोध, कुछ निराशा, ग्लानि आदि का अनुभव करने को प्रेरित किया था।

4.3.1. सामाजिक संदर्भ

पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति और पश्चिमी साहित्य के संपर्क ने भारतीय सामाजिक जीवन का कायाकल्प ही कर दिया। अंग्रेजों के आगमन के पहले भारतीय सामाजिक जीवन भोग-विलास के अंधकारमय वातावरण में भटक गया था। भारत प्रधानतः कृषि प्रधान देश रहा है। अंधविश्वास उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। धर्म और अंधविश्वास के दायरे में सामाजिक जीवन दब सा गया था। अंग्रेजों के संपर्क ने इस दायरे को तोड़ा। अंग्रेजों के संपर्क में आने के बाद उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आधुनिक सुविधाएँ, विश्वास, आदतों आदि से आंध्र का समाज धीरे-धीरे प्रभावित होने लगा। इसमें राजा राममोहन राय, वीरेशलिंगम पंतुलु, गुरजाड़ा अप्पाराव जैसे महान पुरुषों का भी बड़ा हाथ रहा।

पूर्व युगों में भारतीय नारी भोग-वस्तु मात्र रह गयी थी। परिवार और समाज में उस की कोई सही पहचान नहीं थी। भारतीय नारी समाज यह अनुभव करने लगा था कि भारतीय आचार विचार तथा रस्म रिवाजों के पालन मात्र से उनके कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो पायेगी। आगे समाज सुधारकों के प्रयासों के फल स्वरूप नारी को सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। आधुनिक युग में आंध्र समाज को प्रभावित करनेवाले चार मुख्य तथ्य हैं। 1. सुधारवादी आंदोलन 2 अंग्रेजी शिक्षा तथा नवीन भावविचार 3. मुद्रण कला 4. उदारतावाद, व्यक्तिवाद तथा मानवतावाद।

4.3.2. सुधारवादी आंदोलन

19 वीं सदी के आरंभ से ही भारत में समाज को सुधारने के लिए अनेक आंदोलन किए गये। धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त अविश्वासों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों को दूर करने के लिए किये गये ये आंदोलन समाज को भी प्रभावित करते आये हैं। ये आंदोलन भारत में अनेक धार्मिक सांस्कृतिक संस्थाओं के नेतृत्व में किए गये।

4.3.3. ब्रह्म समाज

इस संस्था के संस्थापक श्री राजा राममोहन राय थे। विज्ञान तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली, इसाई धर्म की व्यावहारिकता का प्रभाव भारत पर धीरे-धीरे पड़ने लगा था। सर्वप्रथम इस आधुनिकता से उत्तर भारत में बंगाल द्रुतगति से परिचित होने लगा था। पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान के प्रचार और प्रसार के कारण परंपरागत रूढ़ि ग्रस्त सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था में भी परिवर्तन के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगे। इन्हीं परिस्थितियों में राजा राममोहन राय ने सन् 1927 में इस संस्था की स्थापना की।

राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य सभ्यता के तर्कवादी प्रगतिशील तत्वों को पहचाना और उन्हें स्वीकार किया। भारतीय समाज में उनको स्थापित करने की चेष्टा की। सर्वप्रथम उन्होंने 'सती प्रथा का विरोध' किया। नारी जीवन की इस मूल विभीषिका को जड़ से उखाड़ फेंकने का सफल प्रयास किया। उनके अनुसार सती प्रथा का मूल कारण बहु विवाह प्रथा है। जो बंगाल में ज्यादा थी। बहु विवाह के कारण ही नारी परिवार में सम्पत्ति अधिकार से वंचित थी। पिता अपनी पुत्री के लिए शादी के रूप में आर्थिक स्वावलंबन ढूंढ़ता है तथा पति अपनी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए पुत्र प्राप्ति के लिए कई शादियों की छूट पा लेता है। पारिवारिक संपत्ति पर इस रूप में पुरुष का ही अधिकार होता गया। राजा राममोहन राय ने इस अन्याय को पहचाना। इन्होंने उदाहरण सहित यह सिद्ध करना चाहा कि प्राचीन परंपराओं में नारी को पारिवारिक संपत्ति में भाग मिलता था। इसके आधार पर उन्होंने बहु विवाह का विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन किया। राजा राममोहन क्रांतिकारी भी थे। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर भी अपने संप्रदाय के विरोध में यूरोप की यात्रा की। वहाँ की प्रगतिशील धारणाओं से प्रभावित हुए। उनके प्रकाश में भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने का सफल प्रयास किए।

राजा राममोहन राय संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। साथ ही विविध धर्मों का गहन अध्ययन भी उन्होंने किया था। ईसाई मिशनरियों के साथ संपर्क भी था। इसलिए उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता तथा एकेश्वरवाद पर बल दे कर विश्वबन्धुत्व की भावना से अपने विचारों को ओतप्रोत किया था। धर्म और समाज की व्याख्या के लिए उन्होंने बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाया था। 'बंगदूत' नामक पत्रिका के द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया था। मूर्ति पूजा को उन्होंने धर्म का बाह्याडंबर माना और इसके समर्थन में जितने तर्क दिए जाते ने उन का खंडन उपनिषदों के आधार पर किया। अंध श्रद्धा और परंपरावादिता को उन्होंने खतराजनक बताया। उनके मतानुसार परंपरा का प्राचीनतम रूप शुद्ध ब्रह्म की उपासना है न कि मूर्ति पूजा। धर्म हिन्दू समाज की रीढ़ है। हिन्दू समाज की रचना धर्म के आधार पर ही की गई है। इसलिए धार्मिक सुधार सामाजिक सुधार से अनिवार्यतः संबद्ध हो जाता है। राजा राममोहन राय तथा अन्य धर्म के सुधराकों ने इसे अच्छी तरह पहचान लिया था। अतः राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। जाति प्रथा को उन्होंने अमानवीय और राष्ट्रीयता विरोधी कहा। सती प्रथा के विरोध में उनका प्रयास सर्वथा स्मरणीय रहेगा। उन्होंने विधवा विवाह तथा स्त्री- पुरुष के समानाधिकार का भी समर्थन किया।

राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति को मूल्यवान समझा। इसीलिए अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रसार में उचित योग भी दिया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन आदि महान नेताओं का योगदान भी इस समाज को प्राप्त हुआ। फल स्वरूप ब्रह्म समाज का प्रभाव देश-व्यापी रहा। इसका प्रभाव आंध्र पर भी पड़ा था। ब्रह्मर्षि रघुपति वेंकटरत्नमु नायुडु तथा कंदुकूरि वीरेश लिंगम पंतुलु जी आंध्र में इस समाज के कर्णधार हुए। इनके अतिरिक्त सर्व श्री एम. कृष्णा राव, कोंपेल्ला हनुमंतराव, उन्नव लक्ष्मीनारायण, चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम, गुडिपाटि वेंकट चलम आदि पर इस समाज का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।

4.3.4. आर्य समाज

इस सांस्कृतिक संस्था की स्थापना सन् 1875 में 'स्वामी दयानंद सरस्वती' ने की। यह महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है। भारतीय समाज पर इसका व्यापक प्रभाव रहा है। यह शिक्षित उच्च वर्ग और अशिक्षित आम वर्ग तक पहुंच कर अपने कार्यों से प्रभावित करता रहा है। शहर और गांव दोनों पर इस का प्रभाव रहा। इस संस्था ने अपने विचारों का प्रचार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से न करके देशी भाषा हिन्दी के माध्यम से किया। दयानंद अन्य सुधारकों की तरह उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति न थे। लेकिन सामाजिक क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं क्रांतिकारी परिवर्तन किए। इस संस्था की सब से बड़ी स्थापना यह थी कि जाति व्यवस्था का आधार जन्म न होकर गुण, कर्म तथा स्वभाव होना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार उच्च जाति प्राप्त कर सकता है। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज का जाति विरोध एक सुधारवादी था। उससे निम्न जातियाँ आत्म विश्वास नहीं पा सकी थीं। लेकिन आर्य समाज ने स्वयं अपने वैदिक धर्म से जाति व्यवस्था का आधार गुण, कर्म तथा स्वभाव उपस्थित कर के जाति व्यवस्था को ईश्वरीय देन समझनेवालों की मानसिक दासता दूर की। आर्य समाज ने अछूत लोगों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया था। उनका विश्वास था कि अछूत वर्ग बिना शिक्षित हुए उच्च वर्ग के समक्ष नहीं जा सकता। आर्य समाज ने नारी शिक्षा पर भी जोर दिया था। वैवाहिक आयु के संबंध में भी उन के निश्चित विचार थे।

आर्य समाज का प्रभाव उत्तर भारत पर ज्यादा रहा। दक्षिण में हैदराबाद तक ही इस का प्रभाव सीमित रह गया। आर्य धर्म का पुनरुत्थान इस का प्रधान लक्ष्य रहा। प्रचार सामग्री संस्कृत गर्भित हिन्दी में लिखी जाती थी जिस से हिन्दी गद्य को एक नई शैली प्राप्त हुई। सन् 1953 के पूर्व तक हैदराबाद राज्य के अंतर्गत तेलंगाना प्रांत नाम से आंध्र का कुछ हिस्सा रहता था। इस पर मुसलमान राजाओं का बड़ा आतंक रहा। अतः हैदराबाद में आर्य समाज की शाखाएँ खोली गयीं। आर्य समाज ने सामाजिक और नैतिक मूल्यों को देखते हुए एक आचार संहिता बनाई। इसमें जातिभेद, मनुष्य- मनुष्य या स्त्री पुरुषों में असमानता के लिए कोई स्थान नहीं था। निश्चय ही यह एक लोकतांत्रिक दृष्टि थी। वैदिक धर्म के व्याख्याता होने के बावजूद वे पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक थे। समाज की भौतिक उन्नति के लिए वे पाश्चात्य ज्ञान- विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक समझते थे। उत्तर भारत के आचार-विचार, रहन-सहन, साहित्य-संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा। आर्य समाज के कार्य एक ओर प्रगतिशील थे तो दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी। जहाँ तक मानवीय समता, अस्पृश्यता आदि का संबंध है, इसे प्रगतिशील माना जायेगा। किन्तु मुसलमानों के प्रति इसका आक्रामक रूख प्रगतिगामी प्रवृत्ति का सूचक नहीं है।

4.3.5. थियोसाफिकल सोसाइटी

इसकी स्थापना न्यूयार्क नगर में सन् 1875 में रूस महिला लवेवास्की तथा न्यूयार्कवासी आरकाट साहब दोनों ने की थी। सर्वप्रथम भारत में इसका प्रवेश सन् 1879 में हुआ। तीन वर्ष पश्चात मद्रास के अडयार में इसका प्रधान केन्द्र स्थापित किया गया। श्रीमती 'एनीबीसेंट' सन् 1888 में इस संस्था की इंगलैंड शाखा से संबद्ध हो गयी। सन् 1893 में वे भारत आई और सोसाइटी के विकास में लग गयी। यहाँ की शिक्षा और धर्म के प्रचार के लिए शिक्षा संस्थाओं की वे स्थापना भी करने लगी। उनका विचार था कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़ कर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एवं अध्यात्म परिपूर्ण- धर्म दूसरा और कोई नहीं। इस दिशा में इस संस्था ने आर्य समाज एवं ब्रम्ह समाजं सा हिन्दुओं का बड़ा उपकार किया था। आर्य समाज जैसे इस में खंडन मडंन की शैली नहीं मिलती है। यह सामूहिक धार्मिक गोष्ठियों तथा प्रार्थनाओं को प्रोत्साहित करता है।

अतः भारत के शिक्षित तथा आभिजात्य वर्ग इस की ओर अधिक आकर्षित हो गये थे। आंध्र में यह सोसाइटी दिव्य ज्ञान समाज नाम से लोकप्रिय हुआ था। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में रहने के कारण अंग्रेजी प्रणाली में शिक्षित लोगों में विशेष कर यह समाज अधिक लोकप्रिय हुआ। आज भी आंध्र प्रांत में इसकी कई शाखाएँ काम कर रही हैं।

4.3.6. रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद जी का प्रभाव

ये दोनों भारत में ही नहीं बल्कि पश्चिमी देशों में भी हिन्दू धर्म का प्रचार करने में अत्यंत सहायक हुए। श्रीराम कृष्ण परमहंस भक्ति, विश्वास एवं सात्विकता की जीवित प्रतिमा थे। उन्होंने धर्म को बोध गम्य ही नहीं अनुभूतिगम्य सिद्ध किया था। तब तक ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा दिव्य ज्ञान समाज ने धर्म के क्षेत्र में जो प्रचार एवं प्रसार किया था उससे हिन्दू समाज जागृत हो चुका था। अतः रामकृष्ण परम हंस को पहचानने में तथा उन्हें स्वीकृत करने में कोई विलंब नहीं हुआ था। भारतवासी पाश्चात्य शिक्षा, उसके साहित्य के रंग में अत्यंत रंग चुके थे। विलासिता, भौतिक सुख-सुविधा की बहुत सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध भी होती थी। वे प्राचीन धार्मिक आचार-विचारों, कथा पुराणों तथा अनुष्ठानों के प्राण तत्व को ढकोसला समझने लगे थे। ऐसी स्थिति में रामकृष्ण के उपदेश भारतवासियों के लिए शुद्ध प्राणवायु के समान प्रमाणित हुए।

राम कृष्ण के अनुयायियों में स्वामी विवेकानंद जी अविस्मरणीय हैं। यह कहा जा सकता है कि इन दोनों का मिलन यूरोप और भारत का, बुद्धि और श्रद्धा का अपूर्व मिलन था। विदेशी भ्रमण के बाद विवेकानंद जी ने गुरु रामकृष्ण की साधना तथा चिंतन संपन्न अनुभूतियों को व्यावहारिक सिद्धांतों के रूप में ढाल कर तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए राम कृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ संस्थाओं की स्थापना की थी। इन संस्थाओं ने हिन्दुओं में अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रति विश्वास और गर्व को उद्भूत कर उनमें नवचेतना भर दी। उन्होंने उपदेश दिया था - तुम गर्व से प्रकट करो कि मैं भारतीय हूँ, तुम यह मत भूलो कि सीता, सावित्री और दमयंति तुम्हारे आदर्श नारीत्व हैं। तेरा भगवान सर्वशक्तिमान शंकर है। उनके उपदेशों तथा भाषणों का अच्छा प्रभाव भारतवासियों पर पड़ा था। विशेषकर आंध्र के कृष्ण शास्त्री जी जैसे भाव कवियों पर अधिक प्रभाव पड़ा है।

3.4.7. प्रार्थना समाज

'केशव चंद्रसेन' के प्रभाव से सन् 1867 में महादेव गोविंद रानाड़े के द्वारा इस की स्थापना हुई। इस संस्था के मुख्य चार लक्ष्य थे। जाति व्यवस्था को समाप्त करना, विधवा विवाह, नारी शिक्षा का प्रचार तथा बाल विवाह का निषेध। इस की विशेषता यह रही कि उस युग के अन्य समाजों की अपेक्षा यह धार्मिक न होकर सामाजिक संस्था अधिक रही। विधवाओं के लिए, निराश्रित नारियों के लिए, बच्चों यह रही कि उस युग के अन्य समाजों की अपेक्षा यह धार्मिक न होकर सामाजिक संस्था अधिक रही। विधवाओं के लिए निराश्रित नारियों के लिए, बच्चों के लिए अनेक सेवा संघटन इस के द्वारा स्थापित किए गए। उसने धार्मिक तत्वों को सामाजिक क्षेत्र में लाने की आवश्यकता नहीं समझी। न उसने ब्रह्म समाज की तरह अंग्रेजियत की ओर लालसा भरी दृष्टि से देखा और न आर्य समाज की तरह प्राचीन गौरव का यशगान किया। इस संस्था के सामने सदैव 'मुनष्य की सेवा में ही ईश्वर का प्रेम है' आदर्श रहा। इस की सफलता का पूरा श्रेय महादेव गोविंद रानाड़े को है।

वे बुद्धिजीवी विधिवेत्ता ओर मेधावी व्यक्ति थे। वे चालीस वर्षों तक सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। उन्हें हिन्दू होने का गर्व था। वे भागवत धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैत का विरोध करते हुए रामानुज के द्वैतवाद का समर्थन किया। रानाड़े अतीत के मृततत्व को मत मानकर चलने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने मनुष्य की समानता पर जोर दिया। वे जाति-पांति के विरोधी और अंतर्जातीय विवाह के पक्षधर थे।

स्त्री - शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल दिया। उनका वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण, तर्क पद्धति और सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरुचि आदि से स्पष्ट है कि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे। किन्तु पाश्चात्य मत को भी उन्होंने बिना वितर्क के स्वीकार नहीं किया। वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार-प्रणाली के अनुरूप ढालने की कोशिश कर रहे थे। आंध्र की जनता विशेषकर मध्य वित्तीय जनता पर और कवि लेखकों पर इन का प्रभाव पड़ा था। विशेषकर वीरेशलिंगम और कोक्कोंडा वेंकटरनम पंतुलु जैसे समाज सुधारक लेखकों पर इस समाज का प्रभाव देखा जा सकता है।

स्पष्ट है कि इन सभी सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं का प्रभाव आंध्र की जनता पर था। इन सत्प्रयासों के फलस्वरूप आंध्र की जनता में सुधारवादी दृष्टि उभरने लगी। असंगतियों से भरे समाज में एक नवीन चेतना उत्पन्न हो गयी। इसी नवीन चेतना को नवजागरण कहा जाता है सामाजिक कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, अंधपरंपरा प्रेम आदि सामाजिक विकास विरोधी तत्वों से अलग होकर समाज की उन्नति और राष्ट्रीय मुक्ति की दिशा में आंध्र एक मत होकर जुट गया था।

4.4. आंध्र में समाज सुधार आंदोलन

आंध्र प्रांत समृद्ध प्राकृतिक संपदा का प्रदेश है। कृष्णा, गोदावरी, पेन्ना आदि बड़ा नदियों के मैदानी प्रदेश इसी प्रांत में हैं। सिंचाई के समृद्ध सोत हैं। इसलिए आंध्र का समाज समृद्ध समाज माना जाता है। फिर भी पुरानी परंपराओं तथा अंधविश्वासों के कारण आंध्र का समाज कुप्रथाओं तथा कुरीतियों का शिकार हुआ। समय-समय पर अनेक समाज सुधारकों ने कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का विरोध करके समाज को प्रगति की तरफ ले जाने की कोशिश की है। उनमें सर्वप्रथम नाम कंदुकूरी का है। कंदुकूरी के पूर्व ही कुछ महापुरुषों ने सुधारवादी आंदोलन शुरू किए थे।

अंग्रेजी भाषा, पाश्चात्य सभ्यता की तर्कवादी दृष्टि और मानवता के भाव से प्रेरित होकर सर्वप्रथम उन्होंने हिन्दू समाज में शोषित-दमित नारी और उसके जीवन को उभारने का स्तुत्य प्रयास किए हैं। उनमें एनुगुल वीरास्वामी और कोमलेश्वरपुरम श्रीनिवास पिल्लै जी मुख्य हैं। इन्होंने नारी सुधार के लिए तन मन धन से प्रयास किया है।

सन् 1862 में सामिनेनि मुद्ध नरसिंहम नायुडु तर्कवादी विचारों के प्रचार के लिए 'हितसूचनी' नामक ग्रंथ लिखा। उन्होंने इसके द्वारा कन्याशुल्क, अस्पृश्यता, जातिभेद, शकुन, वेश्यावृत्ति, मंत्र तंत्र आदि अंधविश्वासों का विरोध किया। नेल्लुरु प्रांत के पुदूरु अनंतराम शास्त्री जी ने हरिजनोद्धार के लिए काम करके उच्चवर्गीय लोगों के बहिष्कार का शिकार हुए। विशाख पट्टणमु प्रांत में परवस्तु वेंकट रंगाचार्युलु ने स्त्री पुनर्विवाह का समर्थन करते हुए उसके समर्थन में एक कर-पत्र निकाला। कंदुकूरी ने आजीवन अपने साहित्य, पत्रिकाओं एवं सुधारवादी सामाजिक संस्थाओं के द्वारा नारी जीवन को सुधारने का अप्रतिम प्रयास किए।

कंदुकूरी के प्रयासों ने दूसरे लोगों को भी प्रभावित किया। रघुपति वेंकट रत्नम नायुडु उनमें से एक हैं। इनका जन्म मछली पट्टणम के आस पास हुआ था। उच्च शिक्षा प्राप्त करके आंध्र प्रांत में प्राध्यापक के साथ-साथ मद्रास विश्वविद्यालय के उप-कुलपति बने थे। इन्होंने वेश्याओं का विवाह कराकर उनके परिवार बसाने में अपने जीवन को त्याग दिया था। अस्पृश्यता निवारण के लिए भी इन्होंने कठिन श्रम किया था। वर्णान्तर विवाहों का समर्थन करके अनेक विवाह कराये। वे ब्रह्म समाज के सिद्धांतों से प्रभावित हुए।

कंदुकूरी अगर कर्मवीर थे तो रघुपति धर्म वीर थे। काकिनाडा के पैडा रामकृष्णय्या ने कंदुकूरी से प्रस्तावित विधवा विवाह संपन्न करने के लिए आर्थिक सहायता पहुंचायी है। कंदुकुरी से प्रभावित होनेवालों में बापटूल के देशिराजु पेद बापय्याजी भी मुख्य हैं। ब्रह्म समाज के सिद्धांतों से प्रभावित होकर इन्होंने जनेऊ का भी बहिस्कार किया था। कंदुकूरी के साथ मिलकर अनेक समाज सुधार कार्यक्रमों में भाग लिया था। इसके लिए उन्हें परिवारिक संकट भी झेलने पड़े। कंदुकूरी के बताये मार्ग पर चलकर उन्नव लक्ष्मीनारायण ने अनेक विधवा विवाह करवाये। लड़कियों की शिक्षा के लिए 'शारद निकेतन' नामक एक पाठशाला की स्थापना भी की। तेलंगाना के अरिगे रामस्वामी ने अस्पृश्यता निवारण तथा वर्णांतर विवाह के लिए काम किया।

उपर्युक्त लोगों ने समाज सुधारने के लिए काम किया तो त्रिपुरनेनि रामस्वामी ने समाज सुधार के साथ-साथ भाव क्रांति के लिए काम किया। इनके प्रयास सन् 1930-50 में हुए। इन्होंने 'सूत पुराण' नामक ग्रंथ लिखा। अंधविश्वासों को दूर करने में इसे सफलता मिली। अपने स्वार्थ के लिए अंधविश्वासों को फैलानेवाले ब्राह्मण वर्ग पर इस में मुख्यतया आक्रमण किया गया। इन्होंने तेनालि में सताश्रम की स्थापना करके अस्पृश्यता के निवारण के लिए प्रयास किए। विवाह विधि को तेलुगु में संपन्न करने का प्रयत्न किया। नास्तिकवाद से अत्यंत निकट रहनेवाले संशयवाद को अपनी रचनाओं के माध्यम से जन्म दिया। एक सीढ़ी आगे बढ़कर संशय वाद के आगे गोराजी ने नास्तिकवाद का प्रचार किया। नास्तिकवाद से संतुष्ट न होकर गोराजी ने वर्णांतर विवाहों का समर्थन भी किया।

4.5. सारांश

अंतः सारांश के रूप में यह कह सकते हैं कि हिन्दी की तरह तेलुगु में भी आधुनिक काल का आरंभ गद्य और पद्य के रूपात्मक रूपांतरण के साथ साहित्य में सर्वथा नवीन वस्तु परक आन्दोलनों की वजह से हुआ है। तेलुगु के आधुनिक साहित्य का शुभारंभ भारतीय परिप्रेक्ष्य में होने पर भी बहुत कुछ पश्चिमीकरण से ही संभव हो सका है। तेलुगु साहित्य के आधुनिक काल का इतिहास अब पूर्ण सौ साल का हो गया है। वैसे कुछ तेलुगु के साहित्य

इतिहासकार तेलुगु साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ 1857 से ही मानने के पक्ष में है। इस दृष्टि से तो कम से कम आधुनिक काल का तेलुगु साहित्य डेढ़ सौ साल प्राचीन है। आधुनिक तेलुगु साहित्य का ऐतिहासिक परिचय देने के पहले आधुनिक पूर्वकालीन तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके विभिन्न युगों और प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

4.6. बोध प्रश्न

1. आधुनिक तेलुगु साहित्य का परिवेश के बारे में लिखिए।

2. आधुनिक तेलुगु साहित्य का परिवेश के बारे में बताते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन में आन्ध्रों की भूमिका के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

3. आन्ध्र में समाज सुधारक आन्दोलन के बारे में लिखिए।

4.7. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लागड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

डॉ. एम. मंजुला

5. तेलुगु साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय

5.0.उद्देश्य

दक्षिणांचल साहित्य के अंतर्गत इस खंड में हम तेलुगु साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- तेलुगु भाषा साहित्य, लिपि आदि के बारे में बता सकेंगे,
- आधुनिक तेलुगु साहित्य में हुए परिवर्तन को स्पष्ट कर सकेंगे,
- उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में साहित्य द्वारा व्यक्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का विश्लेषण कर सकेंगे।
- तत्कालीन महत्वपूर्ण लेखकों एवं उनके साहित्य से भारत के नव-निर्माण में जो योगदान मिला उसे भी बता सकेंगे।

रूपरेखा

5.1.प्रस्तावना

5.2. पृष्ठभूमि

5.3. तेलुगु साहित्य : प्रमुख साहित्यकार

5.3.1 श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री

5.3.2 कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु

5.3.3 श्री गुरजाड वेंकट अप्पाराव

5.3.4 वेदम वेंकटराय शास्त्री

5.3.5 धर्मवरपु कृष्णमाचार्युलु

5.3.6 गिडुगु वेंकटराममूर्ति पंतुलु

5.3.7 काशी भट्ट ब्रह्मयया शास्त्री

5.3.8 नादेल्ळ पुरुषोत्तम कवि

5.3.9 पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहाराव

5.3.10 चिलुकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम्

5.3.11 चेन्नाप्रगड़ भानुमूर्ति

5.3.12 कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मण कवि

5.4. काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु

5.5. वीरेशलिंगम पंतुलु- स्त्री शिक्षा

5.6. गुरजाड अप्पाराव- देशभक्ति

5.7. सारांश

5.8. बोध प्रश्न

5.9. सहायक ग्रंथ

5.1. प्रस्तावना

दक्षिणांचल साहित्य के अंतर्गत दो महत्वपूर्ण तेलुगु के साहित्य का अध्ययन करेंगे। इसमें हम तेलुगु साहित्य का अध्ययन करेंगे। भारत के अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में जिस प्रकार का बदलाव हुआ वैसा तेलुगु भाषा साहित्य में भी हुआ। राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में तत्कालीन लेखकों को एक विशेष प्रकार के साहित्य रचने की प्रेरणा दी। यह विशेष प्रकार का साहित्य भारत के नवजागरण से संबंधित था।।

5.2. पृष्ठभूमि

1857 की भारत की क्रांति के परिणामस्वरूप आन्ध्र में स्वतंत्रता के लिए अनेक क्षेत्रों में गतिविधियाँ बढ़ गईं। 1885 में कांग्रेस की स्थापना, आर्य समाज की स्थापना 1905 में वंग-भंग आदि से आन्ध्र जनता में जोश भर गया। ई. सन् 1913 में बापट्ला नामक शहर में आन्ध्र महासभा का अधिवेशन हुआ। लगातार 40 वर्ष के संघर्ष के बाद 1953 के अक्तूबर की पहली तारीख को आन्ध्र प्रदेश की स्थापना हुई और जिसके फलस्वरूप 1956 में नवम्बर पहली तारीख को आन्ध्र प्रदेश का निर्माण हुआ। महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में सम्पन्न स्वतन्त्रता आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह, झण्डा सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि का प्रभाव आन्ध्र पर पड़ा और आन्ध्र जनता ने सभी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। इन सबका प्रभाव तेलुगु साहित्य पर देखा जाता है।

- **राजनैतिक घटना चक्र तथा साहित्यिक प्रतिक्रिया**

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही विविध राज्यों में राष्ट्रीय चेतना प्रज्वलित हुई इस राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर कवियों ने उसके अनुरूप कविताएं लिख कर देश की जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के मार्ग में अग्रसर किया। इस दिशा में तेलुगु साहित्य के कवियों का योगदान उल्लेखनीय है।

भारत में क्रांतिकारी की जन्मभूमि के रूप में बंगाल का नाम चिरस्मरणीय है। गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन के बंगाल राष्ट्र का विभाजन करने से बंग देश की प्रजा ने प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार का विरोध किया। वे स्वराज्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हुए। बंगदेश में प्रारंभिक इस आन्दोलन ने सारे देश को प्रभावित किया।

'बन्देमातरम' का नारा देश की सारी दिशाओं में गूँज उठा। इससे प्रभावित होकर आन्ध्र राज्य ने भी आन्दोलन का मार्ग अपनाया। इससे शिक्षित वर्ग अत्यधिक रूप से प्रभावित हुआ। इस आन्दोलन को आन्ध्र राज्य में प्रसार करने के उद्देश्य से 'बिपिन चन्द्रपाल' ने कलकत्ता से यात्रा प्रारम्भ करके बरंपुरम्, विशाखापट्टणम् से राजमहेन्द्रवरम्, बंदरु, नेल्लूरु आदि मुख्य नगरों में सरकार की दमन नीति के विरुद्ध गंभीर भाषण दिये। इन भाषणों से आन्ध्र राज्य के लोग प्रभावित हुए।

प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार के शासन के विरुद्ध आवाज उठाने वाले तेलुगु साहित्य में प्रथम राष्ट्रीय कवि के रूप में 'चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पंतुलु' का नाम ही लिया जाता है। सरकार की कर-नीति के विरुद्ध सन् 1895 ई. में 'गोदावरी मंडल सभा' में पठित इनकी कविता 'चिन्तामणि' शीर्षक पत्रिका में प्रकाशित हुई। कविता ऐसे कहते हैं कि 'खेतीबारी करने के लिए, पानी माँगने पर, चीजों को बेचने के लिए, यहां तक कि लकड़ियों को बेचने के लिए भी कर देना पड़ता है। नगरों में नगर निगमों को, भाग जाना चाहेंगे तो गाड़ी में बैठने के लिए टिकट के रूप में, अगर हम मकान को बेचना चाहेंगे तो स्टैंप के रूप में, यहां तक कि नमक खरीदने के लिए भी कर देना पड़ता है। इस प्रकार उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष की भावना अभिव्यक्त की। इस कविता के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल स्वर गूँज उठा।

इसी प्रकार पी. रामशास्त्री जी ने 'विशाखपट्टणम मंडल सभा' दोहों के माध्यम से देश के प्रति प्रेम भावना अभिव्यक्त की। उनके अनुसार 'देश के प्रति प्रेम भावना प्रकट करने वाले गुण बढ़कर और कौन-सा गुण अच्छा होता है ? सारी जनता देश के प्रति प्रेम भावना रखकर एकत्रित हो जाए, वह प्रजा समूह ही एक किले के समान होती है'। इस प्रकार के पद्यांशों द्वारा लोगों में देश के प्रति प्रेम भावना को अंकुरित किया। इस सभा में 'ईश्वर जगन्नाथ - मार्तंड शास्त्री' ने एक छन्द के माध्यम से भारत की अवनति का वर्णन किया 'गोरों को अकाल से पीड़ित जनता की दयनीय स्थिति से परिचित कराने के लिए, ऐसी आवाज हजारों मुखों के माध्यम से मुखरित करो, जिससे हिमालय की चोटियाँ गूंज उठें।'

सन् 1902 ई. से 'कृष्णा पत्रिका' ने देश भक्तिपूर्ण लेखों को प्रकाशित किया। दिसम्बर 1905 ई. की 'कृष्णापत्रिका' में 'कोंडा वेंकटप्पय्या' जी ने अपने संपादकीय में बंग-भंग आन्दोलन के बारे में इस प्रकार लिखा – 'हम इस बात पर संतोष व्यक्त कर रहे हैं कि आज सेतु से हिमालय तक व्याप्त अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम को देखने के लिए जीवित हैं। ब्रिटिश शासन में 'वन्देमातरम्' शब्द गाली के रूप में परिवर्तित हो गया। स्वदेश के प्रति प्रेम प्रकट करने वाले जंगली जानवर के समान शिकार होते जा रहे हैं। बड़े-बड़े लोग चपरासियों के रूप में परिवर्तित हो रहे हैं।' इस प्रकार उन्होंने उक्त पंक्तियों के माध्यम से देश दुरवस्था के बारे में बताने के साथ-साथ अपनी राष्ट्र के प्रति प्रेम की स्तुति की।

इसी पत्रिका में 'चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति' जी ने इस प्रकार लिखा- 'देश की उन्नति के लिए एवं लोगों के सुख के लिए देश के प्रति प्रेम भावना एक उपकरण के रूप में काम में आयेगी।' इस प्रकार हमें यह बात स्पष्ट होती है कि 'बिपिन चन्द्रपाल' के आन्ध्र राज्य की यात्रा करने के पूर्व ही हमारे नेताओं ने राष्ट्रीय चेतना के विकास को लक्ष्य कर देश भक्ति की भावना का प्रचार किया। इससे प्रभावित होकर एक अज्ञात कवि ने 'द क्रई मदर ऑफ इण्डिया' (हिन्दू देश का आर्तनाद) शीर्षक गीत की रचना की। उसने इस गीत में इस प्रकार लिखा है- हिन्दुओं कितने वर्ष इस दीनावस्था में जीवन बिताना चाहते हो ? निरुत्साह या उदास बनकर और भी हीन या दीन बनोगे क्या ? आप जैसे अत्यन्त सुन्दर लोगों के कमजोर बनने से क्या मुझे अपना जीवन दूसरों के लिए बिताना चाहिए? मेरे संपूर्ण फसल कुछ भी न बचकर संपूर्ण रूप से बाहर गया। बिना पौरुष के किस प्रकार जीवन बिताऊँ? इस प्रकार जीवित रहने पर भी उस जीवनी की सार्थकता क्या है ? बछड़े के मुँह को बन्द करके अनगिनत द्रोह करके समस्त दूध, दही एवं मक्खन को दूसरों को बेचने की दीन स्थिति, भूखे-प्यासे बेटों को छोड़कर मेरा समस्त धन कहीं जा रहा है। मेरे प्रति प्रेम भावना प्रकट करो। अब तक तो आप बिगड़ गए। कम से कम इस क्षण से आप सब भाई बनकर मेरे प्रति प्रेम भावना प्रकट करों। हाय ? कितने दिन इस प्रकार जीवन बिताना पड़ेगा। ईश्वर आपकी सहायता करे। हे माता ? हम से की गई सारी गलतियों को क्षमा करो और हम पर कृपा करो। पूर्व की तरह हम सब आपसी वैर भावना युक्त न होकर एक बनकर जीवन बितायेंगे।

'चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पंतुलु' जी ने 'वन्देमातरम्' आन्दोलन से प्रभावित होकर सन् 1906 ई. में 'मनोरमा' शीर्षक पत्रिका में कुछ पद्यों की रचना की। 'भरत खण्ड विमुक्ति' शीर्षक के अंतर्गत लिखित पद्यों के कवि का नाम उल्लेख नहीं किया गया, परन्तु मोलि नागभूषण शर्मा के मतानुसार 'संभवतः ये पद्य इस पत्रिका के संपादक चिलकमर्ति जी के ही होंगे।' 'भारतखण्ड विमुक्ति' शीर्ष में लिखित पद्य सन् 1906 ई. में प्रकाशित हुए। 'मदूरी सुब्बारेड्डी' जी लिखते हैं- 'हमारा इस प्रकार अनुमान करना गलत नहीं होगा कि चिलकमर्ति 'मनोरमा' के सम्पादक होने से इन पद्यों को उन्होंने लिखा होगा।' इन दोनों के मत से सहमत होना उचित प्रतीत होता है।

चिलकमर्ति ने पद्यों के माध्यम से स्वतन्त्रता की भावना को संपूर्ण रूप प्रदान किया उन्होंने पद्यों में यह बताया कि 'स्वतन्त्रता के बिना जीवन बिताना जीवन नहीं कहलाता है।' 'सन् 1907 ई. में सरकार ने 'पंजाब केसीर', 'लाला लाजपतराय' को गिरफ्तार किया। इस घटना से आन्ध्र राज्य में क्रान्ति ने भयानक रूप धारण किया। लोगों की इस क्रान्तिकारिता को उन्होंने अपने पद्यों में अभिव्यक्त किया। देश भक्तों को राजद्रोही मानकर कारागार भेजने की शासन - नीति को भावावेश पूर्ण पद्यों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से विरोध किया। 'चिलकमर्ति' ने अपने पद्यों के माध्यम से देश की जनता को उत्तेजित किया।

अपनी कविताओं के माध्यम से देश भक्ति भावना अभिव्यक्त करके राष्ट्रीय चेतना को प्रज्वलित करने वालों में 'मंगिपूडि वेंकटशर्मा' प्रमुख माने जाते हैं। जन्मभूमि एवं स्वदेश को ही भगवान मानकर, देश भक्ति को ही भगवदभक्ति मानकर साहित्य रचना करने वालों में मंगपूड वेंकट शर्मा अग्रगण्य हैं। उनसे लिखित राष्ट्रीय गीत देश भक्ति भावना से ओतप्रोत है। स्वतन्त्रता आन्दोलन काल में वेंकटशर्मा जैसे देश भक्तों ने मातृ देश को आराध्य देवता के रूप ग्रहण किया। उन्होंने भारतमाता को सर्वदेवंता स्वरूपिणी माना। वेंकटशर्मा जी मातृभूमि और अपने बीच के सम्बन्ध को 'भारत माता' शीर्षक कविता में मनोहर रीति से अभिव्यक्त किया। यह कविता सन् 1911 ई. में 'आन्ध्र पत्रिका' तेलुगु नये वर्ष के संस्करण में प्रकाशित हुई।

सन् 1907 ई. में 'वेंकटशर्मा' और 'मुट्नूरि सुब्बारायडु' ने 'वन्देमातरम्' शीर्षक गीत की रचना की। इसमें 'वन्देमातरम्' को महान मंत्र के रूप में वर्णन करते हुए जनता को उत्तेजना प्रदान की। राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर और इस आन्दोलन के विकास के लिए उपयुक्त कविताएँ लिख कर तेलुगु साहित्याकोश में अपने लिए एक विशेष स्थान प्राप्त करने वाले कवियों में 'कविकोकिला' 'दुब्वूरि रामिरेड्डी' भी प्रमुख हैं। उन्होंने अपनी 'भारत मातृ बांधम्' (1916-18) शीर्षक कविता के माध्यम से देश की जनता को प्रभात के तेजोमय प्रकाश में अंधकार के विलीन होने का रूपक बान्ध कर निद्रा से जागृत होने की सूचना दी।

'देशमात्रोस्तवम्' (1916-18) शीर्षक कविता में उन्होंने अतीत भारत के गुण गायन करने के साथ-साथ वर्तमान युग के महा पुरुषों – 'विवेकानन्द', 'रविवर्मा', 'रवीन्द्र' इत्यादि की स्तुति की। उनसे लिखित देश भक्तिपूर्ण कविताओं में 'मातृ शतकम्' (1916-18) भी उल्लेखनीय उद्बोधनों से मण्डित देश भक्तिपूर्ण गीतों की रचना करने वालों में 'गुरजाड अप्पाराव' जी सिद्धहस्त हैं। वे आन्ध्र देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ होने के पूर्व ही राष्ट्रीयता एवं सामाजिक सुधार भावों से परिचित थे। अगस्त 1, सन् 1901 ई. में परिचय डायरी में निम्नलिखित इन पंक्तियों से हम उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिचय प्राप्त कर सकते हैं। 'पाश्चात्य सभ्यता कुछ अन्धविश्वासों को दूर करती है इस बात के कुछ सीमा तक सत्य होने पर भी उससे स्वातन्त्र्य एवं सामाजिक विकास प्राप्त करना असम्भव है। यह स्वतन्त्रता का पूर्ण रूप न

होकर नाममात्र ही होगा। इस प्रकार की सभ्यता मनुष्यों को अवलक्षणों, अस्थिरत्व एवं दाषों के शिकार बनाती है।' इससे हम उनकी राष्ट्रीय भावना का अनुमान लगा सकते हैं।

● समाज-सुधारवादी आन्दोलन

स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ आन्ध्र में समाज सुधार की चेतना जागृत हुई ब्रह्मर्षि सर 'रघुपति वेंकट रत्नम्नायुडु' के नेतृत्वं ब्रह्म समाज की स्थापना हुई, जिससे सुधारवादी कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ। 'बाल विवाहों' का निषेध, 'विधवा विवाहों' को प्रोत्साहन 'जाति-पांति' भेद-भाव का निर्मूलन 'अनाथ शिशुओं का संरक्षण', 'देवदासी प्रथा' का बहिष्कार, 'वेश्यावृत्ति' का निर्मूलन इत्यादि कार्यक्रम सफलता पूर्वक संचालित होने लगे। ब्रह्म समाज के तत्वावधान में 'वेंकट रत्नम नायडु' ने सभा समाजों में भाषण देकर अंग्रेजी पत्र - पत्रिकाओं में लेख लिखकर जनता में सुधार की भावना को उजगार किया। आप से प्रेरित होकर राव बहादुर 'श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु' ने 'विधवा विवाह', 'कन्या शिक्षा', इत्यादि कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। इसके लिए आपने रचना को माध्यम बनाया। गद्य-पद्य दोनों विधाओं में रचना कर साहित्य को समाजोपयोगी सिद्ध किया।

5.3. तेलुगु साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय

आधुनिक युग का तेलुगु साहित्य प्रधानतः गद्य, पद्य, नाटक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। आधुनिक युग विशेष रूप से गद्य का युग कहा जाता है। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, प्रहसन, समालोचना, जीवनी, यात्रा वृत्तान्त, आत्म कथा शास्त्र ग्रंथ, नीति-नाटक इत्यादि विधाओं में गद्य का प्रादुर्भाव और विकास हुआ। इस संक्रांति युग के साहित्य में प्राचीन परम्पराओं को साथ लिये नवीनता का पोषण हुआ। आधुनिक युग के साहित्य को चार प्रधान धाराओं में विभाजित कर सकते हैं।

1. सम्प्रदाय सिद्ध प्राचीन कविता पद्धति।

2. राष्ट्रीय कविता पद्धति।

3. भाव कविता पद्धति।

4. अभ्युदय कविता पद्धति।

अब हम आधुनिक तेलुगु साहित्य का प्रथम चरण (1885-1920) के अन्तर्गत गद्य का विकास तथा कविता में सम्प्रदाय सिद्ध प्राचीन कविता पद्धति, राष्ट्रीय कविता पद्धति का परिचय प्राप्त करेंगे।

➢ प्रमुख साहित्यकारों का परिचय

आधुनिक तेलुगु में गद्यशैली का श्रीगणेश 'परवस्तु चिन्तय सूरि' (ई. सन् 1806-1862) ने बाल व्याकरण रचकर किया। इससे आप 'आन्ध्रपाणिनी' कहलाये।

बहुजन 'पल्लि सीतारामाचार्युलु' (ई. सन् 1827 1901) ने 'शब्द रत्नाकरम्' नामक कोश तथा 'प्रौढ़ व्याकरण' की रचना कर तेलुगु भाषा को संयमित किया। वर्णक्रम पद्धति पर रचित कोशों में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इनसे पूर्व 'ए. डी. कालबेल' तथा 'सी.जी. ब्राउन' नामक पाश्चात्य विद्वानों ने कोश रचना का आरंभ किया था।

गद्य रचना में आदि पुरुष के रूप में विख्यात, समाज सुधारक, नारी जनोद्धारक 'वीरशलिंगम पतलु' बहुमुखी प्रतिभाशाली साहित्यकार हुए। प्राचीन परंपरा के पक्षपाती, हिन्दू जाति के उद्धारक 'कोक्कोड वेंकट रत्नम् पंतुलु' (ई. सन् 1842-1915) जी ने भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी विवादों का सूत्रपात किया। आप आन्ध्र के 'जानसन' कहलाये ।

आधुनिक युग में रीति ग्रंथकार 'वेदम् वेंकटराय शास्त्री' प्रख्यात हैं । तेलुगु नाटक के आद्यपुरुष 'धर्मवरपु कृष्णमाचार्युलु' हुए। सर्वश्री 'वड्डादि सुब्बाराय' कवि (ई. सन् 1854- 1938) 'कोलाचलम् श्री निवास राव' (ई. सन् 1854-1979) 'आकोंडि व्यासमूर्ति' (ई. सन् 1860-1916) 'जयन्ति रामय्या' (ई. सन् 1860-1941) 'पूंडला रामकृष्णय्या' (ई. सन् 1860- 1904) 'अल्लंराजु रंगशायि' कवि (ई. सन् 1860-1936) आदि आधुनिक तेलुगु के प्रमुख वैतालिक हुए।

आधुनिक युग में व्यावहारिक भाषा (जनभाषा) तेलुगु के प्रयोग के प्रबल समर्थक के रूप में 'गिडुगु राममूर्ति पंतुल' का विषेष योगदान है । 'श्री काशीभट्ट ब्रह्मय्य शास्त्री' जी प्रमुख नाटककार तथा भाषा शास्त्री हुए । आन्ध्र 'वाल्मीकि' नाम से प्रचलित 'श्री वाविलिकोलन् सुब्बाराव' (ई. सन् 1863-1939) ने 'वाल्मीकि रामायण' का तेलुगु में काव्यानुवाद प्रस्तुत किया।' श्री नादेल्ला पुरुषोत्तम' कवि (ई. सन् 1863-1938) आन्ध्र के 'हिन्दुस्तानी नाटककार' के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। लगभग सौ वर्ष पहले आन्ध्र में हिन्दी नाटकों का रचा जाना और उनका मंचित होना राष्ट्रीय एकता का बलवती प्रमाण कहा जा सकता है। ठेठ तेलुगु के प्रति प्रेम जगानेवाले कवि के रूप में 'श्रीदास श्रीराम' कवि (ई. सन् 1864-1908) चिरस्मरणीय हैं । आन्ध्र का 'एडिसन', नाम से विख्यात 'श्री पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंह राव' सुधारवादी रचनाकार, विशेष रूप से व्यंग्य लेखक के रूप में जाने जाते हैं।

5.3.1. श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री

'श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री' (ई. सन् 1866-1961) 'शतावधानी' के रूप में विख्यात हुए । आप बहुमुखी प्रतिभाशाली, लगभग 200 ग्रन्थों के प्रणेता हैं। आन्ध में 'मिल्टन' और 'आन्ध्र स्कॉट' नाम से प्रसिद्ध 'चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम' राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं। 'श्री चिलकूरि वीरभद्रराव' (ई. सन् 1872-1939) ने 'आन्ध्र चरित्र (आन्ध्रों का इतिहास) रचकर इतिहास रचना का सूत्रपात किया। अनुसंधान कार्य में अपना सारा जीवन बिताया। आपको आन्ध्र महासभा ने 'आन्ध्र चरित्र चतुरानन' विरुद्ध देकर सम्मानित किया। 'कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मण' कवि शास्त्र ग्रन्थों की रचना कर चिरस्मर्णीय हुए। तेलुगु में विश्वकोश का पहला भाग प्रकाशित कराने का श्रेय आपको है। तेलुगु भाषा में 'आन्ध्र पत्रिका' नाम से पूर्व प्रथम पत्रिका चलाने का श्रेय 'श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव' को है। अन्य साहित्यकारों में 'तंजनगरषु तेवप्पेरुमाल्ल्य्या' (ई. सन् 1872-1921) और 'मंत्रि प्रेमड भुजंगराव' (ई. सन् 1876 - 1940) उल्लेखनीय हैं। इनमें विशेष रूप से विविध विधाओं में ख्याति प्राप्त साहित्यकारों का परिचय दिया जाता है।

5.3.2. कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु (ई. सन् 1848 - 1919)

आधुनिक तेलुगु गद्य के निर्माताओं में वीरेशलिंगम पंतुलु आद्य पुरुष तो कहलाते ही है उसके साथ-साथ 'गद्य ब्रह्म' तथा 'गद्य तिक्कना' नाम से आधुनिक तेलुगु साहित्य में चिरस्मरणीय हैं। गद्य में विविध विधाओं का आपने शुभारम्भ किया था। आधुनिक तेलुगु को संस्कृतनिष्ठ समास बद्ध शैली से मुक्त कराकर सरल एवं व्यावहारिक तेलुगु को आपने प्रशस्त किया। पाश्चात्य संस्कृति तथा अंग्रेजी-शिक्षा की अच्छाइयों को स्वीकार करने का आपने अनुरोध किया

। आपने अंग्रेजी विद्धवान 'गोल्डस्मित' कृत 'विकार आफ वेक फील्ड' के अनुकरण कर 'राजशेखर चरित्रम' नामक उपन्यास की रचना की, जो तेलुगु साहित्य का **प्रथम उपन्यास** माना जाता है । इसमें हिन्दू समाज की कुरीतियों का खण्डन किया गया । इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर एक अंग्रेज लेखक ने इसका अनुवाद किया, जो 'फार्चून्स व्हील' नाम से प्रसिद्ध है । 'गलिवर्स ट्रावल्स' का आपने 'सत्य राजा पूर्वदेश यात्रलु' नाम से तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया । इसमें आपने सनातन विचारों वालों हंसी उड़ाई । 'अभिज्ञान शाकुन्तलम', 'मालवीकाग्नि मित्र', 'प्रबोध चन्द्रोदय', 'रत्नावली' आदि संस्कृत नाटकों का आपने अनुवाद किया । प्रह्लाद नाटक, दक्षिण 'गो ग्रहणम्', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'विवेक दीपिका' इत्यादि आपके मौलिक नाटक हैं ।

वीरेशलिंगम पंतुलु ने तेलुगु में सर्वप्रथम 'प्रहसन' रचना का सूत्रपात किया है । प्रहसनों के द्वारा समाज में प्रचलित कुरीतियों पर करारा व्यंग्य किया । अपूर्व ब्रह्मचर्य प्रहसन् विचित्र विवाह, कलह प्रिया, बलात्कार गान विनोद, वेश्या प्रिय, महावंचक असहाय शूर, कौतुक वर्धिनी, इत्यादि प्रहसन प्रमुख हैं ।

नारी जनोद्धरण के लिए वीरेशलिंगम पंतुलु ने साहित्य को साधन बनाया । 'सत्यवती चरित्र', 'चन्द्रमती चरित्र', 'सत्य संजीवनी', 'सती मणि विजयम्', 'भानुमती कल्याणम" आदि नारी जागरण सम्बन्धी रचनाओं का प्रणयन किया । 'पंतुलु जी ने तेलुगु में जीवनी साहित्य का सूत्रपात किया । श्री 'विक्टोरिया' महारानी का चरित्र, जीसेस चरित्र आदि प्रमुख जीवनियों के साथ-साथ आत्मकथा रचना का शुभारम्भ किया । स्वीय चरित नाम से अपनी आत्मकथा रचते हुए आपने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत किया ।

वीरेशलिंगम पंतुलु जी ने 'आ-धुकवुल चरित्र' रचना में आदिकावि 'नन्नय्या' से लेकर अपने समय तक के समस्त कवियों के जीवन तथा साहित्य का परिचय दिया । कवियों का काल निर्णय तथा ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने में आपने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया । पंतुलु जी अच्छे समीक्षक और अनुसंधाता हुए । नाचनसोमनाथ कृत 'उत्तर हरिवंश', अनंत कवि कृत 'भोजराजीय', चेरिगोंड धर्मन्ना कृत 'चित्र भारत', नारायण कवि कृत 'पंचतन्त्र', कवयित्रि मोल्ल कृत 'रामायण', नंदि मल्लया तथा घंटा सिंगया कृत 'वराह पुराण' आदि का संपादन कुशलता पूर्वक किया । पंतुलु जी बहुमुखी प्रतिभाशाली हुए । इन्होंने तर्क संग्रह, ज्योतिष शास्त्र, शरीर शास्त्र, भौतिक शास्त्र इत्यादि शास्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया । आपके भाषण विद्वत्तापूर्ण होते थे । इस प्रकार वीरेशलिंगम पंतुलु जी आधुनिक परिभाषा के अनुरूप तेलुगु साहित्य में उपन्यास, नाटक, जीवनी, आत्मकथा, प्रहसन, निबन्ध, समीक्षा, शास्त्र ग्रन्थ, अनुवाद आदि में सर्व प्रथम कृति की रचना करते हुए युग निर्माता हुए ।

वीरेशलिंगम पंतुलु ने तेलुगु साहित्य में विविध प्रकार की विधाओं का सूत्रपात किया । इससे पूर्व आपने 'शुद्धांध निरोष्ठ्य निर्वचनम्, नैषधमु, शुद्धांध भारत संग्रहम्' इत्यादि काव्यों में सुदीर्घ समासों का प्रौढ़ कात्य रचा था । बाद अनुभव किया कि सरल भाषा में गद्य रचनाओं से जनता को लाभ हो सकता है । तब से व्यावहारिक भाषा में रचना करते हुए साहित्य को जनोपयोगी बनाया । आपने 'सरस्वती नारद संवाद' नामक 'खंड काव्य' रचा । गद्य में 'संधिविग्रह' की रचना की । जिसके पहले 'चिन्नयसूरी' ने गद्य शैली में परिवर्तित किया था ।

वीरेशलिंगम पंतुलु एक साथ समाज सुधारक तथा लेखक थे । रचना को आपने समाज सुधार का साधन बनाया । शुद्ध साहित्यिक रचनाओं साथ-साथ समाज-सुधार संबंधी रचनाओं का भी प्रणयन किया । नारी जनोद्धार के लिए बहुत प्रयास किये । नारी शिक्षा पर बल दिया । बाल विवाहों को बंद करवाया । विधवा विवाह तथा अन्तर वर्ण विवाह करवाये । 'विवेक वर्धिनी' पत्रिका की स्थापना कर श्रुति स्मृति एवं पुराणों से प्रमाण देकर 'विधवा विवाहों' को उपयुक्त बताया

'वितंतु (विधवा) शरणालय' की स्थापना कर तीस हजार रुपयों का चंदा जमा किया। आपने स्त्री शिक्षा का प्रचार करते गाँव तथा नगरों में कन्या पाठशालाएं खुलवाईं। इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर तत्कालीन सरकार ने आपको 'राव बहादुर' उपाधि प्रदान की।

5.3.3. श्री गुरजाड वेंकट अप्पाराव

श्री गुरजाड वेंकट अप्पारावजी का जन्म 21 सितम्बर 1862 में हुआ और निधन 30 नवम्बर 1915 को हुआ। आप तेलुगु साहित्य के 'नवयुग के वैतालिक' माने जाते हैं। आपने कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक, निबन्ध, समीक्षा, जीवन चरित्र, डायरी आदि साहित्यिक प्रक्रियाओं द्वारा समाज में नई चेतना भरने का प्रयास किया। तत्कालीन समाज के परम्परागत भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास आदि को निर्मूल कर क्रांतिकारी भावनाओं का प्रचार करनेवालों में अग्रसर समाज सेवी, कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु के साथ साहित्यिक क्षेत्र में काम किया। स्त्री शिक्षा का प्रचार मूर्ति पूजा का खण्डन निर्गुणोपासना का मण्डन किया। बाल्य विवाह के दुष्परिणामों को समाज सम्मुख रखकर सामाजिक भ्रष्टाचार का विरोध किया। विधवा-विवाह का आपने समर्थन किया। वेश्या - वृत्ति का विरोध किया। समाज में ऊंच-नीच की भावनाओं को मिटाने के लिए शास्त्रीय ज्ञान का प्रचार किया और सहपंक्ति भोजनों का आयोजन करवाया। सरकारी कार्यालयों में व्याप्त रिश्वतखोरी का भण्डार फोड़ किया।

1886 में बी. ए. प्रथम श्रेणी में पास कर जिलाधीश कार्यालय में लिपिक का कार्य संभाला। कम समय में उसे छोड़कर विजयनगरम् के महाराजा कालेज में अध्यापक बन गये। कुछ वर्षों के बाद 'श्री श्री आनन्द गजपति राजा' के सहयोग से समाज की सेवा की। राज्य में दीवान के पद पर प्रतिष्ठित होकर शासन कार्य संभाला। राजनैतिक क्षेत्र में भी काम किया। विजयनगर की नगर पालिका के सदस्य के रूप में भी काम किया। 1913 में मद्रास विश्वविद्यालय के सेनेट के सदस्य मनोनीत हुए। मितभाषी, सुदृढ़, हास्यप्रिय तथा प्रसन्न चित्त व्यक्ति हुए।

इनके रचनाओं में 'मुत्याल सरालु', 'कासुलु', 'लवणराजु कला', 'कन्यका', 'दामन – पितियस', 'पूर्णम्मा', 'मनिषि', 'देशभक्ति', 'लंगरेत्तुमु' आदि प्रसिद्ध कविताएं हैं। 'मुत्याल सरालु' में नये छन्द का प्रयोग किया। 29 मोती समान कविताओं में समाज का उद्धार परक खण्डिकाएँ हैं, जिनमें जाति-पाति, सम्प्रदाय, ऊच-नीच की भेदभावना को मिटाने पर विचार किया। 'तोकचुक्क' (पुच्छलतारा) नामक कविता से जगत को नया सन्देश दिया। 'लवणराजु कला' (लवणराजा का स्पप्न) में अस्पृश्यता का खण्डन किया। 'राजा रामचन्द्र' और वशिष्ठ के बीच 'ज्ञान वाशिष्ठ' के आधार पर वेदान्त परक संभाषण प्रस्तुत किया गया। 'कन्यका' नामक कविता में मानहरण करनेवाले राजा को धर्म की चुनौती देते हुए कन्यका देवी ने अग्निकुण्ड में प्रवेश कर प्राण त्याग किया। 'डामन – तितियस' कविता में दो मित्रों के बीच परस्पर प्राण की रक्षा के लिए संसिद्ध होने का निर्मल स्नेह का वर्णन किया। 'पूर्णम्मा' नामक कविता में मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए 'मानव सेवा ही माधव सेवा' का प्रबोध किया। 'देश भक्ति' कविता में देश का तात्पर्य केवल मिट्टी नहीं, देश का तात्पर्य मनुष्य है प्रस्तुत किया। आज यह गीत आन्ध्र जनता का कण्ठहार बन गया है।

पद्य रचना के अतिरिक्त गद्य रचना में भी आप सिद्धहस्त हैं। 'मी पेरेमिटि?' (आपका नाम क्या है?) नामक कहानी में 'शैव-वैष्णव' के बीच भेदभाव का खण्डन किया। 'पेद्द मसीदु' (बड़ी मस्जिद) नामक कहानी में हिन्दू- मुस्लिम की वैमनस्यता पर प्रहार किया। 'दिद्दुबाटु' (सुधार) नामक कहानी में पत्नी के रहते हुए भी वेश्यागामी पुरुषों का चित्रण कर स्त्री-शिक्षा, स्त्री का मूल्य आदि तत्वों का विशद वर्णन किया। 'मेटिल्डा' नामक कहानी में 'वृद्ध पति' और 'नवयुवती

पत्नी' के बीच संघर्ष का चित्रण हुआ। 'पुर्नविवाह' का निषेध, स्त्री को पति त्यागने का हक नहीं, स्त्री जाति की आर्थिक स्वतन्त्रता आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला गया। 'संस्कर्त हृदयम्' कहानी में समाज सुधार की चर्चा हुई।

'रवीन्द्र कवि', 'आधुनिक आन्ध्र वचनम', 'संस्कृतम् - मातृ-भाषलु' आदि निबन्ध अंग्रेजी में विरचित हुए। काव्य में श्रृंगार रस, वर्डसंवर्त-कविता, बंगीय साहित्य, ग्राम्य भाषलु (ग्राम्य भाषाएँ), 'आन्ध्र कविता पितामहुडु' आदि प्रसिद्ध निबन्ध हैं। तेलुगु साहित्य में 'डायरी शैली' में इनका स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कन्या शुल्कम्' नाटक में ब्राह्मण परिवारों में व्याप्त भ्रष्टाचार, विधवाओं की दीनता, वृद्ध विवाह का संरम्भ, कोर्ट-कचहरी के चक्कर, समाज में धोखा देने वाले तत्वों को प्रस्तुत किया। 'कोण्डु भट्टीयम्', (बिल्हणीयम्) प्रसिद्ध रूपक हुए। अप्पाराव जी 'कला - कला के लिए' नहीं 'कला समाज के लिए' माना और अपने समस्त जीवन में समाज की उन्नति के लिए साहित्य रचना की। इनकी शैली सरल होकर जनरंजक हुई और प्रगतिशील शक्तियों के लिए प्रेरणाप्रद हुई। आधुनिक तेलुगु साहित्य में इनका स्थान गणमान्य है।

5.3.4. वेदम् वेंकटराय शास्त्री (ई. सन् 1853-1929 तक)

वेदम् वंकटराय शास्त्री कवि, समालोचक, नाटककार और संपादक हुए। इन्होंने संस्कृत से 'उत्तर रामचरित', 'अभिज्ञान शाकुंतल', 'मालविकाग्निमित्र', 'नागानंद रत्नावली' आदि नाटकों का तेलुगु रूपांतर प्रस्तुत किया था। 'प्रतापरुद्रीयम्', 'बोब्बिलि युद्धम्', 'उषानाटकम्' इत्यादि विशुद्ध मौलिक नाटकों की रचना की और प्राचीन काव्यों की विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएँ लिख कर तेलुगु जनता में साहित्य के प्रति रुचि जगाई। 'शृंगारनैषध' तथा 'आमुक्तमाल्यदा' की व्याख्या क्रमशः सर्वकष व्याख्या और संजीवनी व्याख्या नाम से की। शास्त्री जी बहु भाषा विद्वान थे। तमिल, कन्नड़, और हिन्दी भाषाएँ जानते थे। तर्क, व्याकरण और दर्शन शास्त्र में पण्डित थे। प्राचीन परंपरा के पक्षपाती होते हुए भी नवीन सिद्धांतों का प्रणयन किया और आधुनिक तेलुगु के निर्माताओं में प्रमुख हुए। कविता की भाँति गद्य में संधि नियमों का पालन नहीं करने का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में 'विसंधि विवेक' नामक ग्रंथ भी लिखा। इन नियमों का पालन करते हुए 'कथासरितसागर' की रचना की। 'प्रक्रिया छन्दस्सु', 'अलंकार सार संग्रह' नामक रीति ग्रन्थों की रचना की। 'जन विनोदिनी' नामक पत्रिका का संपादन किया। जिसमें विविध समस्याओं को लेकर पंडितों के साथ वाक्युद्ध या लेखनी युद्ध चलाया। वीरेशलिंगम् के विधवा विवाह आन्दोलन का विरोध करते हुए आपने 'स्त्री पुर्नविवाह दुर्वाद नर्वापण' नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया।

'ज्योतिष्मति' नामक 'मुद्रणालय' की स्थापना कर उत्तम ग्रन्थों का टीका सहित प्रकाशन किया। 'सूर्य राय आंधनिघंटुवु' के संपादन का कार्य कुछ समय तक किये। साहित्यिक सेवाओं के लिए 'आंध्र महासभा' ने सन् 1920 में 'महोपाध्याय' उपाधि देकर सम्मानित किया। 'द्वारकापीठाधिपति' ने इन्हें 'महा महोपाध्याय' और 'विद्या दान व्रत महोदधि' उपाधियाँ प्रदान कीं। आन्ध्र विश्वविद्यालय ने सन् 1927 में 'कलाप्रपूर्ण' की उपाधि से सम्मानित किया।

5.3.5. धर्मवपु कृष्णमाचार्युलु

कृष्णमाचार्युलु पेशे से वकील थे। अभिनय में रुचि रखते हुए नाट्य प्रदर्शन के लिए वेशधारण किया और तेलुगु रंगमंच का शुभारंभ किया। बल्लारि में 'सरस विनोदिनी' सभा की स्थापना, तेलुगु के नाटकों के साथ शेक्सपीयर के नाटकों का भी प्रदर्शन किया। जनता में नाटक के प्रति रुचि पैदा की। 'विषाद सारंगधर' नामक दुखांत नाटक को अंग्रेजी नाटक कला की शैली में प्रस्तुत किया। कृष्णमाचार्युलु के तेलुगु में तीस नाटक, कन्नड़ में दो नाटक रचे गये जिनमें बारह

तेलुगु नाटक प्रकाशित हुए। 'चित्रनलीयम', 'विषाद सारंगधर', 'प्रह्लाद', 'सावित्री' और 'पादुका पट्टाभिषेकम्' आदि नाटक प्रसिद्ध हुए। 'मुक्तावली', 'प्रमीलार्जुनीयम्', 'पांचाली स्वयंवरम्', 'रोषनारा', 'वरुधिनी' के अलावा अन्य नाट्य ग्रन्थ भी हैं। नाटकों में दोहों की बहुलता है। नाटक रचना के साथ-साथ कुशल अभिनेता भी थे। बाहुक, दशरथ, राजराज नरेन्द्र इत्यादि पात्रों के अभिनय में अपूर्व प्रतिभा का प्रदर्शन किया। गद्वाल के महाराज ने उनके नाटक साहित्य की सेवा पर प्रसन्न होकर 1910 ई. में 'आन्ध्र नाटक कविता पितामह' की उपाधि से सम्मानित किया।

5.3.6. गिडुगु वेंकटराममूर्ति पंतुलु

गिडुगु वेंकट राममूर्ति पंतुलु भाषा को प्रांथिक शैली की अतिशय व्याकरण बद्धता से मुक्त करवाकर सहज माधुर्य पूर्ण सरल प्रवाहमयी तेलुगु को प्रशस्त करने वालों में अग्रणी हैं। इन्होंने व्यावहारिक तेलुगु के प्रचार हेतु 'तेलुगु' नामक मासिक पत्रिका चलायी। प्रारंभ में परंपरावादी पंडितों ने विरोध किया था। आन्ध्र साहित्य परिषद के 1925 वार्षिक अधिवेशन में अनेक प्राचीन ग्रंथों से प्रमाण देकर आपने व्यावहारिक भाषा का समर्थन किया। एतदर्थ अधिवेशन में भाषा सिद्धांत का प्रस्ताव पारित किया गया। बाद में नव्य साहित्य परिषद साहिती समिति आदि साहित्यिक संस्थानों ने इसका समर्थन किया। परिणाम स्वरूप आधुनिक तेलुगु साहित्य में व्यावहारिक भाषा का प्रयोग बढ़ गया। राममूर्ति जी ने सवर (शबर) जाति की भाषा पर कार्य किया। सवर 'तेलुगु निघण्टु' नाम से दोशों का निर्माण किया। मद्रास सरकार ने 'राव साहब' उपाधि देकर सम्मानित किया। 'सवर-मैन्युअल एण्ड रीडर', 'सवर - इंग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश सवर डिक्शनरी' का प्रकाशन मद्रास सरकार ने किया और 'कैसर-ए-हिन्द' स्वर्ण पदक देकर आदर दिया। तेलुगु में बाल 'कवि-शरण्यमु', 'व्यास – मंजरी', 'पंडित- भिषक्कुल- भाषा भेषजम्' तथा 'गद्य-चिंतामणि' आदि की रचना की।

5.3.7. काशी - भट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री (ई. सन् 1863-1940 तक)

ब्रह्मय्या शास्त्री जी भाषा शास्त्री और अनुसंधाता के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'आर्यमत बोधिनी' नामक पत्रिका की स्थापना की जिसके द्वारा हिन्दु धर्म की विशिष्टता का प्रचार किया और वीरेशलिंगम् पंतुलु के सुधारवादी आन्दोलन का विरोध किया। ब्रह्मय्या शास्त्री जी ने 'आर्य बृन्दानंद – संधायिनी' नामक नाटक समाज की स्थापना की। इसमें वीरेशलिंगम कृत 'शाकुंतल' तथा स्वरचित 'त्रिपुरासुर विजय व्यायोग' नामक नाटकों का प्रदर्शन करवाया। भारती, शारदा, आन्ध्र पत्रिका, उदयलक्ष्मी, सुजाता आदि पत्रिकाओं में लगभग 200 लेख प्रकाशित कर विमर्श कांग्रेसर नाम से सम्मानित हुए। विवेकानंद पुस्तक भण्डार तथा भक्त समाज संस्थाओं की स्थापना की। गलती से किसी पात्र में निधन का समाचार छपा था। उसका देखा-देखी सभी पत्रिकाओं ने शोक समाचार छपवाये। कई संस्थाओं ने शोक सभाएँ की। शास्त्री जी विनोदी स्वभाव के होने के कारण इसके काव्य रूप दिया। 'कविबुध - लोक-सन्दर्शन' नामक मनोहर शैली में काव्य रच कर आपने बुद्धि कुशलता का परिचय दिया।

5.3.8. नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि (ई. सन् 1863-1938 तक)

पुरुषोत्तम एक उत्तम कवि, नाटककार और संपादक के रूप में विख्यात है। कोश और शास्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया। मछिली पट्टणम् में 'नेशनल थियेट्रिकल सोसायटी' नामक नाटक समाज ने इनको नाटक रचना का प्रोत्साहन दिया। इन्होंने 32 मौलिक हिन्दी नाटकों की रचना की। भाषा दक्खिनी और तेलुगु लिपि में नाटक रचना कर दक्षिण में हिन्दी प्रचार का शुभारंभ किया था। 'बुध विधेयिनी' नामक मासिक पत्रिका का संपादन किया और उसके द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रचार किया। चित्र कविता, बन्ध कविता, गर्भ कविता करने में आप सिद्धहस्त थे। चतुर्मुखी कंद पद्य,

रामायण तथा शतकों में आपकी कविता की प्रतिभा देखने योग्य हैं। अद्भुतोत्तर रामायण, यादवाद्रीशोपाख्यानम्, महेन्द्र पुराण, रंग दासीयम, यामिनी विनोदम, बभ्रुवाहन चरित्र, कृष्णानदी माहात्म्य आदि काव्य हैं। पारिजातापहरण हरिश्चन्द्र और सांगधर इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। सीताराम शतक, मल्लिकार्जुन शतक पूर्वकर्म शतक आदि प्रमुख शतक ग्रन्थ हैं।

5.3.9. पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहाराव (ई. सन् 1865 से 1940 तक)

लक्ष्मी नरसिंहाराव ने 'साक्षी' नाम से अनेक निबन्ध लिख कर छः भागों में प्रकाशित किया। इनके द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति, साहित्य, सम्प्रदाय तथा अन्यान्य कुरीतियों का खण्डन किया। इन निबन्धों में प्रयुक्त शब्द वैचित्र्य, व्यंग्य और परिहास भावना, आक्षेप-पद्धति, आन्तरिक विकारों को अनेक सूक्तियों के द्वारा मर्मस्पर्शी बनाकर प्रस्तुत किया। इनकी शैली सरस तथा प्रवाहमयी है। 'साक्षी' निबन्धों में जंघाल शास्त्री काल्पनिक पात्र नामक विलक्षण पात्र है। अंग्रेज़ी साहित्य के 'एडिसन' कृत 'स्पेक्टेटर' के नमूने पर इनका सृजन माना जाता है।

नरसिंहाराव जी अंग्रेजी तथा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। वे सरस कवि, नाटककार और निबन्ध लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'कण्ठाभरण' इनका जनप्रिय नाटक बना। इनके नाटकों में 'राधाकृष्ण', 'विजयराघव', 'कल्याण राघवम्', 'विप्र नारायण', 'सारंगधर चरित्र','वृद्ध विवाह', 'कोकिल', 'पूर्णिमा', 'वीरमति', 'सरस्वीत', 'दृष्ट-प्रधानि' आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने बुद्ध बोध द्वारा लोगों में गौतम बुद्ध और अहिंसा के प्रति श्रद्धा-भाव का संचार किया। 'प्रचण्ड चाणक्य' और 'चूडामणि' इनके प्रमुख ऐतिहासिक नाटक हैं। 'आनेगोंदि उर्लाम' संस्थानों का दीवान मंत्री पद कार्य संभाला। इनकी साहित्य सेवा और पाण्डित्य पर प्रसन्न होकर 'पिठापुरम' के राजा ने 116 रुपये का मासिक पुरस्कार जीवन पर्यन्त देने की व्याख्या की।

5.3.10. चिलुकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम्

श्री लक्ष्मी नरसिंहम् बहुमुखी प्रतिभाशाली के साथ कुशल कवि नाटककार उपन्यासकार, प्रहसन तथा निबन्ध लेखक भी। विचित्र बात यह है कि 40 वर्ष की अवस्था में ही इनकी आँखों की रोशनी चली गई। फिर भी आपने प्रज्ञा चक्षु हो, साहित्य सृजन किया। देश माता मनोरमा आदि पत्रों का सम्पादन किया। श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु द्वारा चलायी गई उत्तम मौलिक रचनाओं प्रतियोगिता में इन्हें रामचन्द्र विजय नामक उपन्यास पर चिन्तामणि नामक पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'अहल्याबाई', 'हेमलता' आदि ऐतिहासिक उपन्यास तथा 'गणपति' नामक 'हास्यरस' प्रधान उपन्यास, 'सौन्दर्य तिलक', 'कर्पूर मंजरी' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

'गयोपाख्यान' इनका लोकप्रिय नाटक रहा। 'कीचक-वध', 'द्रौपदी-परिणय', 'श्रीराम-जननमु', 'पारिजातापहरणम्', 'नल चरित्र' और 'सीता कल्याण' आदि इनके प्रमुख नाटक हैं। लगभग सभी नाटक मंचित हुए। भास कृत सभी नाटकों का तेलुगु में अनुवाद किया। इन्होंने ऋग्वेद का अनुवाद प्रारम्भ किया था। पर यह कार्य अपूर्ण रहा। 'आन्ध्र मिल्टन' और 'आन्ध्र स्काट' नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हेंने 'आत्मकथा' रचते हुए उसके साथ-साथ आन्ध्र का इतिहास प्रस्तुत किया। विशेषता यह है कि रचना कार्य द्वारा इन्होंने उन दिनों में ही 1 लाख रुपया कमाया था। एक लेखक के लिए यह बड़े गर्व की बात है। शष्ठिपूर्ति के अवसर पर सभी रचनाएँ दस भागों में प्रकाशित हुईं। एक महान देशभक्त थे। 'बिपिन चंद्रपाल' की अध्यक्षता में आयोजित गोदावरी मंडल महासभा में आशु कविता सुनाई थी, जो देशभक्ति से ओतप्रोत थी। (भरतखंडम्बु चक्कीन पाडि आवु) आन्ध्र विश्व विद्यालय ने सन् 1943 में कलाप्रपूर्ण उपाधि देकर सम्मान दिया।

5.3.11. चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति (ई. सन् 1869-1945 तक)

तेलुगु साहित्य में राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित सर्वप्रथम खण्ड काव्य 'भारत धर्म दर्शनम्' (1907) की रचना करने वाले 'श्री चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति' हैं। देश, धर्म, दर्शन सम्बन्धी रचनाएँ तथा प्राचीन भारत की गौरव गाथा सम्बन्धी अनेक रचनाएँ प्रमुख हैं। जिनमें भारत धर्म दर्शनम् अहिंसा, उल्लेखनीय हैं।

5.3.12. कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मण कवि (ई. सन् 1877-1923 तक)

कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मण कवि ने 'विज्ञान-चन्द्रिका मण्डलि' संस्था के नाम 'ग्रन्थमाला' का प्रकाशन शुरू किया । उसके द्वारा तेलुगु भाषा के विविध शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन किया। पदार्थ विज्ञान भौतिक, रसायन प्रकृति शास्त्र, वृक्ष, जीव तथा वैद्य शास्त्रों से संबंधित अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। 'चिलुकूरि वीरभद्रराव' से 'आन्ध्र चरित्र' और 'कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी' से अर्थ शास्त्र लिखवाया। इस प्रकार के अनेक ग्रन्थ विशेषज्ञों के द्वारा लिखवाये। अनुसंधान के प्रति विशेष रूप से रुचि रखते थे। मुनगाल राजा रंगराय के यहाँ दीवान के पद पर कार्यरत थे। व्यस्तता में भी इन्होंने तेलुगु भाषा तथा शास्त्र ग्रन्थों की रचना तथा अनुसंधान पर ध्यान रखा। इन्होंने सर्वप्रथम सन् 1913 में विश्वकोश के निर्माण का शुभारंभ किया और प्रथम भाग प्रकाशित किया। तदनंतर 'काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु' ने दूसरा भाग प्रकाशित करवाया। तदनंतर तेलुगु भाषा समिति ने इसके आठ भाग प्रकाशित किये। 'हिन्दु महम्मदीय युगमुलु', 'शिवाजी चरित्र', 'हिन्दू देश कथा संग्रहम' इनकी इतिहास.. सम्बन्धी रचनाओं में प्रमुख हैं। 'लक्ष्मणराय व्यासावली' आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है। तेलुगु भाषा में वैज्ञानिक पद्धति में शास्त्र ग्रन्थों की रचना करने वाले चिरस्मरणीय हैं।

5.4. काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु (ई. सन् 1867 से 1938 तक)

तेलुगु में प्रथम दैनिक पत्रिका, निकालने का श्रेय नागेश्वर राव पंतुलु को है। 'अमृतांजन' नामक औषधि का आविष्कार कर उसके प्रचार के लिए प्रथम बम्बई में (आन्ध्र पत्रिका) साप्ताहिक निकाली। 1914 में मद्रास में वह दैनिक के रूप में अवतरित हुआ। इन्होंने 1924 में 'भारती' नामक साहित्यिक पत्रिका का शुभारम्भ किया। 'नागेश्वरराव' जी ने 'आन्ध्र वाङ्गमय चरित्र' नाम से 'तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' भी लिखा और दानशीलता पर मुग्द्ध हो महात्मा गांधी ने इन्हें 'विश्वदाता' और 'देशोद्धारक' नामक उपाधियाँ प्रदान कर गौरवान्वित किया। साहित्य सेवाओं के लिए इन्हें 'कलाप्रपूर्ण' कहलाये। इनकी रचनाओं को प्रोत्साहित करते पुरस्कार देकर सम्मान दिया करते थे। इन्होंने तेलुगु भाषा और साहित्य की बड़ी सेवा की।

- **पद्य साहित्य**

आधुनिक युग का काव्य साहित्य अपनी परंपरागत काव्य रीतियों में तत्कालीन युग प्रवृत्तियों को लिए अवतरित हुआ। प्राचीन काव्य शैली एवं प्रबन्ध काव्यों को नवीन गुणों के साथ प्रस्तुत करने का श्रेय 'तिरुपति वेंकटेश्वर कविद्वय' को है। 'दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री' (ई. सन् 1871 से 1919 तक) 'चल्वपिल्ल वेंकट शास्त्री' (ई. सन् 1870 से 1950 तक) कविद्वय ने गाँव-गाँव में जाकर पण्डित सभाएँ, कवि सम्मेलन करते हुए आन्ध्र जनता में तेलुगु साहित्य के प्रति सुरुचि पैदा की। इन दोनों ने तत्कालीन समस्त राज दरबारों में जाकर 'शतावधान', 'अष्टावधान', 'आशु कविता', 'चाटूक्ति' इत्यादि द्वारा 'राजा-महाराजाओं' को प्रसन्न कर सम्मान के साथ पुरस्कार भी प्राप्त किये और कविद्वय स्वतन्त्र प्रवृत्ति वाले कवि थे। इन्होंने तेलुगु भाषा को परिष्कृत करते हुए व्याकरण के नियमों को संकुचित बताया और तेलुगु

भाषा को उपादेय करने का प्रयास किया। अपने आपको कवीन्द्र मानकर कविता में पराजित करने की चुनौती दिया करते थे। इनकी चुनौती पर 'वेंकटरामकृष्ण' तथा 'कोप्परपु कविद्वय' रुष्ट हो गये थे। पण्डित सभाओं में भिड़ंत होती थी। इसी श्रेणी में 'वेंकट पार्वतीश कविद्वय' हुए। 'बालन्तरपु वेंकट राव' (सन् 1880) तथा 'ओलेटि पार्वतीश' (सन 1882) ।

तेलुगु साहित्य में प्रथम देशभक्ति का प्रबोध करने वाले कवि श्री 'गुरजाड वेंकट अप्पाराव' थे। देश की दुर्दशा को देख कर कवि का मन कलात्मक काव्य रचना से निकल कर राष्ट्र भक्ति के रूप में प्रकट होता है। उद्यम शील बनकर सभी क्षेत्रों में अग्रसर होने का प्रबोध करता है। देश की परिकल्पना केवल मिट्टी से नहीं वहाँ के निवासी मनुष्य मात्र से की जाती है। साम्प्रदायिक दीवारों को लाँघकर प्रेम रूपी पुष्पों को सुरक्षित करता है। पत्रों की आड़ में छिपकर कविता कोयल बोल उठे और उस वाणी से देश प्रेम रूपी सुन्दर भावनाएँ जागृत हों।

- **भाषा - शिल्प**

कविता को सर्व साधारण की सम्पत्ति बनाने हेतु भाषा को परिमार्जित कर सर्व जनोपयोगी करने हेतु 'वीरेशलिंगम् पंतुलु', 'गिडुगु राममूर्ति पंतुलु', 'काशीनाथनि नागेश्वर राव' तथा 'गुरजाड अप्पाराव' आदि ने व्यावहारिक भाषा का प्रचार किया। स्वतन्त्रता संग्राम में नव जागरण की कविता में गेयता लाकर भाषा तथा साहित्य को समृद्ध किया। 'मुत्याल सरालु' गीत में कथावस्तु, छन्द, रचना रीति आदि में नवीनता पायी जाती है। इस युग की कविता शैली में निम्न प्रकार के नवीन लक्षण पाये जाते हैं। इतिवृत्त संक्षिप्त तथा स्वतन्त्र होता था। प्राचीन परंपरागत वृत्त तथा छन्दों को छोड़कर लोक गीत शैली में कन्नड़ के शट्पदि तथा फारसी के गजल के अनुरूप नवीन शैली में रचना होती थी। वस्तु 'तथा कथ्य तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से लिया जाता था। रचना में सरलता तथा सहजता का ध्यान रखा जाता था। राष्ट्रीय भावनाओं के साथ नव जागरण का समाज सुधार का खण्डन होता था।

- **गद्य साहित्य**

श्री 'परवस्तु चिन्नथसूरि' ने 'बाल व्याकरण' की रचना के साथ व्याकरण सम्मत भाषा का स्वरूप निर्धारण करते हुए 'नीति चन्द्रिका' की रचना कर 'आधुनिक तेलुगु' में गेय रचना का सूत्रपात किया। श्री 'वीरेशलिंगम पंतुलु' ने कहानी को छोड़ तेलुगु में समस्त गद्य विधाओं का 'बीजारोपण' किया। श्री 'गिडुगु राममूर्ति पंतुलु' ने साहित्यिक भाषा और व्यावहारिक भाषा में अन्तर स्पष्ट करते हुए, जन सामान्य की भाषा अर्थात् व्यावहारिक भाषा के प्रयोग पर बल दिया। परिणाम स्वरूप पत्र-पत्रिकाओं में व्यावहारिक भाषा का प्रयोग होने लगा। विश्व विद्यालय के पाठ्य पुस्तकों में व्यावहारिक भाषा की पुस्तकें अपठित पुस्तकों के रूप में स्वीकृत की गईं।

अनुसंधान कार्य के अन्तर्गत प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों का परिमार्जन सम्पादन व मुद्रण, साहित्यिक इतिहास भाषा शास्त्र पर अनुशीलनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन इस युग में हुआ। रीति ग्रन्थ, कोश, विविध शास्त्र, ग्रन्थ, विश्व कोश आदि का प्रणयन हुआ। तेलुगु भाषा तथा साहित्य के विकास तथा संवर्धन हेतु अनेक संस्थाओं का आविर्भाव हुआ। साहिती- समिति, नव्य साहित्य परिषद, नाटक कला परिषद, तेलुगु भाषा समिति, आन्ध्र साहित्य परिषद तथा विश्वविद्यालयों की ओर से उल्लेखनीय कार्य हुआ। पत्र, पत्रिकाओं ने भाषा के प्रयोग तथा परिमार्जन में अभूतपूर्व योगदान दिया। इस प्रकार माना जाता है, विविधता, उत्तमता तथा नवीनता के लिए हुए 'गद्य युग' नाम से अभिहित हुआ

। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि की रचना प्रारंभ में अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव रहा। तदनन्तर मौलिक सृजन हुआ। इस युग की प्रवृत्तियों में नवीनता होने से यह नवीन युग कहा जाता है।

- **नाटक**

समाज सुधार के विचार को लेकर रचा गया श्री 'गुरजाडा अप्पाराव' का नाटक 'कन्याशुल्कम्' विशेष प्रसिद्ध है। 'वेदम् वेंकटराय शास्त्री' कृत 'प्रताप रुद्रीयम्' तथा 'बोब्बिलि युद्धम्' आदि ऐतिहासिक नाटक श्री चिलकमर्ति नरसिंहम् कृत 'कीचक वध' तथा 'गयोपाख्यान' आदि पौराणिक नाटक लोकप्रिय हुए। ध्यान देने की बात यह है कि 'आन्ध्र केसरी', 'टंगुटूरि प्रकाशम', 'विश्वदाता' देशोद्धारक नागेश्वर राव पंतुलु, 'देशभक्त' कौंडा वेंकटप्पय्या पंतुलु, 'आन्ध्ररत्न' दुग्गिराल गोपाल कृष्णय्या जैसे राजनैतिक नेताओं ने इन नाटकों में अभिन्य किया था।

आन्ध्र में अनेक संस्थाएँ स्थापित हुईं, जिनके द्वारा ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक अभिनय होते रहे। बल्लारि राघवाचारी ने रंगमंच को विशेष रूप में संवारा। इच्छा पुरपु यज्ञनारायण कृत 'रसपुत्र विजय', गुडिमेड सुब्बाराव कृत 'खिल्जी राज्य पतन', कोप्परपु सुब्बाराव कृत 'रोशनारा' और वाविलाल सोमयाजुलु कृत 'नायकुरालु', लोकप्रिय ऐतिहासिक नाटक हुए। श्री गुरजाड़ा अप्पाराव कृत 'कन्याशुल्कम्' के अतिरिक्त पानुगटि लक्ष्मीनरसिंहम् कृत 'कंठाभरण' काल्लकरि नारायण द्वारा विरचित चिंतामनि, वरविक्रयम, मधुसेवा और सोमराजु रामानुज कृत 'रंगून रौडी' आदि सामाजिक नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी युग में तेलुगु प्रान्त में नाद्रेल्ल पुरुषोत्तम कवि कृत 'हिन्दुस्तानी' नाटक आन्ध्र प्रान्त में खेले जाते थे।

प्रहसन लेखन में श्री वीरेशलिंगम आद्य पुरुष हैं। सामाजिक कुरीतियों के प्रक्षालन हेतु प्रहसन लिखे गये। इनमें गुरजाडा अप्पाराव कृत 'विलहणीयम्' उल्लेखनीय है। निबन्ध लेखन में पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंह राव के साक्षी (छः भाग) कट्टमंचिराम लिंगारेड्डी के व्यासमंजरी (पाँच खण्ड) महत्वपूर्ण हैं। श्री उन्नव लक्ष्मी नारायण पंतुलु कृत 'माल पल्ली' उपन्यास में गाँधी जी के आदर्शों के अनुसार दलित जनोद्धार, उच्च वर्ण वालों के उत्याचार दुखियों की सहिष्णुता आदि का प्रभावशाली चित्रण किया गया।

तेलुगु में कहानी (कथा) का शुभारंभ गुरजाडा अप्पाराव कृत 'मी पेरेमि' (आपका नाम क्या है), दिदु वाट (सुधार), तथा संस्कृत हृदयम् आदि सामाजिक कहानियों से हुआ। समालोचना क्षेत्रों में श्री वीरेशलिंगम्, कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने सूत्रपात किया। इन सभी साहित्यिक विधाओं में उत्तरोत्तर विकास होता गया और सामाजिक जागरण के लिए रचना होने लगी।

5. 5. वीरेशलिंगम पंतुलु -स्त्री शिक्षा

यह विषय सबको विदित ही है कि विद्या (शिक्षा) के कारण विनय, विवेक आदि सद्गुण संप्राप्त होते हैं। हमारे पूर्वजों का विचार था कि विद्या से अनभिज्ञजन मनुष्य ही नहीं हैं, इसलिए उन्होंने लिख दिया कि 'विद्या विहीनः पशुः'। मात्र पुरुषों को नहीं स्त्रियों के लिए भी विद्या आवश्यक होने से, स्त्रियों में भी विनय, विवेक आदि सद्गुण होने चाहिए, ऐसा माननेवालों के लिए यह तथ्य करतलामलक (सुज्ञेय) है। यदि पुरुष समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर चुकने वाला रसिक शिरोमणि हों और पत्नी पशु प्रायः मूढ़ - शिरोमणि बनकर रहे तो उन दोनों के मन कैसे मिलेंगे ? सुख कैसे संभव होगा ? सामने एक हयरत्न (श्रेष्ठ अश्व) और पीछे एक भैंस के जुती गाड़ी के समान है, कुटुंब-चक्र (परिवार रूपी गाड़ी) ठीक तरह से कैसे चलेगी? शिक्षा से स्त्रियों के कई प्रयोजन हैं। सर्वप्रथम शिक्षा से अकल बढ़ती है। गृह-कृत्य-निर्वाह में

मुख्य रूप से बद्धि (अकूल) की आवश्यकता है, इसलिए स्त्रियाँ शिक्षित हों तो घर के काम-काज को और सावधानी के साथ संपन्न करेंगी। बुद्धि के होने से यह युक्त (समुचित) है और यह अयुक्त (अनुचित) है, यह ज्ञान होगा। इससे सत्यकार्यों को ही और दुष्कार्यों को न करना, यह संभव हो जाएगा। इससे एक परिवार के लोग, बिना कलहों के, एकता के साथ रहेंगे।

यदि स्त्रियाँ शिक्षित हों तो पर्व की पुण्य सतियों की कथाओं को पढ़कर, स्वयं भी उनके समान बनने का प्रयत्न करेंगे। आज के समान (शिक्षा रहित हो) जब दस स्त्रियाँ एकत्र होती हैं, तब दूसरों के दोषों को न गुन कर, अच्छे ग्रन्थों को पढ़ते हुए या उन ग्रन्थों के अच्छे विषयों की चर्चा करते हुए समय बिताएँगी। जब पति को परदेश जाना पड़े तब गृहकृत्य- निर्वाह में गोपनीय रूप से पति से विचार विमर्श कर, उनको ठीक ढंग से संपन्न करने में समर्थ होती हैं। अपनी संतान को विद्या और बुद्धि सिखाकर, सदाचरण से युक्त बनाने के अतिरिक्त पाठशाला में पढ़े हुए विषयों की परीक्षा कर, उन्हें दंडित भी करती हैं। स्त्रियों के लिए शिक्षा के कारण प्राप्त होने वाले प्रयोलान अगिणत हैं।

पूर्वकाल में पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ भी सबसे समाहृत होती थीं। सीता आदि का अपने पतियों के साथ सभाओं में आकर, सिंहासन पर बैठना आदि कई विषयों को इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। स्त्रियों को अस्वतन्त्र कह देने मात्र से यह समझना गलत होगा कि वे आदर के योग्य नहीं हैं। जब तक पुरुषों के समान स्त्रियों का आदर होता था, तब तक हमारे देश काफी उन्नत दशा में था। ऐसा समादर करना छोड़, शिक्षित करना छोड़कर, उन्हें दासी जन के समान देखना प्रारंभ करने के बाद ही, हमारे देश की दुर्भाग्य युद्ध दशा का प्रारंभ हुआ है।

इसलिए अब हमारे लोगों (देशवासियों) से पुनः-पुनः निवेदन कर रहा हूँ कि वे स्त्रियों को अच्छी शिक्षा दिलाकर, विवेक महितात्मा बनाकर, उसके बाद समुचित विषयों में उनके विचारों को स्वीकार कर, उन्हें समादर करते हुए, हमारे पूर्वजों की चर मोन्नत दशा को पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न करें।

5. 6. गुरजाड़ अप्पाराव - देशभक्ति

1. देशमुनु प्रेमिंचमन्ना, मंचि अन्नदि पेंचुमन्ना।

वट्टि माटल कट्टि पेट्टोय, गट्टि मेल तल पेट्टवोय।

2. पाडि पटलु पोंगिपोर्ले, दारिलो नवु पाटु पडवोय।

तिंडि कलिगिते कंड कलदोय्, कंड कलवाडेनु मनिषोय॥

3. ईसुरोमति मनुषुलुटे, देशमेगति बागुपडुनेयूं।

जल्दुकोनि कललेल्ल नेचुक, देसि सरुकुल निपवोय्॥

4. अन्नि देशाल क्रम्मवलेनोय्, देसि सरकुल नम्मवलेनाय्।

डब्बु तेलेनट्टि नरुल, कीर्ति - संपदलब्बवोय्॥

5. वेनुक चूसिन कार्यमे मोय ? मंचि गतमुन कोंचमोनोय्।

मंदगिंचक मुंदु अडुगेय्, वेनुक पडिते वेनुकेनोयू॥

6. देशाभिमानं नाकु कद्दनि, वट्टि गोप्पल चेप्पुकोकोय्।

पूनि दानानु वोकमेल, कूर्चि जनुलकु चूपवोय् ॥

7. सोंतलाभं कोंतमानुक, पोरुगु वाडिकि तोडुपडवोय् ।

देशमंटे मट्टि कादोय, देशमंटे मनुषुलोय् ॥

8. चेट्टपट्टा पट्टकोनि, देशस्थलंता नडुव वलेतोय् ।

अन्नदम्मुल वलेनु जातुलु, मतमुलन्नी मेलगवलैनोयू ॥

9. मतं वेंरैतेनु येमोय्?, मनसु वोकटै मनुषुलुंटे ।

जाति यन्नदि लेंचि पेरिगि, लोकमुन राणिचुनोय् ॥

10. देशमनियेडि दोड्ड वृक्षः प्रेमलनु पूलेत्तवलेनोय् ।

नरुल चेमटनु तडिसि मूलं धनं पटलु पंड वलेनोयू ॥

देशभक्ति (सारांश) गुरजाड अप्पाराव

1. देश से प्रेम कर रे भाई, भलाई को विवर्धित कर रे भाई ।

व्यर्थ की बड़ाइयाँ (गप्पे) बंद कर दे, सकारात्मक (सुद्ड़) उपकार की बात सोच ॥

2. दूध-दही, फसल आदि की पुष्पकलता हो, ऐसे मार्ग (उपाय) के लिए प्रयास कर ।

अन्न (भोजन) उपलब्ध हो तो शक्ति है, शक्तिवान ही मानव है ॥

3. निर्वार्य हो मानव (देशवासी) रहें तो देश का उद्धार (सुधार) कैसे होगा?

शीघ्रता से समस्त कलाओं को सीखकर, देशी माल से (देश को) भर दे ॥

4. सभी देशों में फैल जाना चाहिए, देशी माल को (वहाँ) बेचना चाहिए ।

जो धन नहीं कमा सकता, उसकी कीर्ति प्रतिष्ठा नहीं होती ॥

5. पीछे (अतीत की ओर) की ओर देखना व्यर्थ है, अतीत में अच्छाई कम ही है ।

आल्सय न करके कदम बढ़ा, पीछे रह गया तो पीछे ही रह जाएगा ॥

6. ये गप्पे मत हाँक किं मुझ में देशाभिमान है ।

प्रयास कर, एक तो भला काम कर, जनता को दिखा ॥

7. स्वार्थ (अपना लाभ) थोड़ा त्याग कर, पड़ोसी की सहायता कर ।

देश का तात्पर्य मिट्टी नहीं है, देश का अर्थ मानव है ॥

8. हाथ से हाथ मिलाकर, समस्त देशवासियों को चलना (काम करना) चाहिए ।

सहोदर भाव से समस्त जातियों और धर्मों को आचरण करना चाहिए ॥

9. यदि मनुष्य एक होकर (एकता से) रहें तो धर्म अलग हों तो क्या होगा?

राष्ट्र की भावना उभर कर, लोक में शोभायमानं होगी ।।

10. देशरूपी महान् वृक्ष पर, प्रेम रूपी फूलों को विकसित होना चाहिए।

मानवों के पसीनों से सींच कर मूलधन रूपी फसलों को पल्लवित होना चाहिए ।।

5. 7. सारांश

दक्षिणांचल भाषाओं में तेलुगु भाषा साहित्य का अपना अलग महत्व है। इसे भाषा में साहित्य रचना की पद्धति बहुत प्राचीन है। विदेशी शासन के दमनचक्र से संपूर्ण भारतीय जनता त्रस्त थी। समाज का बुद्धिजीवी वर्ग इस दुस्थिति से उबरने के लिए उपाय सोचने लगा। लेखकों ने परिवर्तन के लिए लेखन शुरू किया। आधुनिक तेलुगु साहित्य में आए बदलाव को बता सकते हैं। तेलुगु भाषा के कई महत्वपूर्ण रचनाकारों ने न सिर्फ राष्ट्रीय बल्कि सामाजिक चेतना के लिए भी कार्य किया। आप बता सकते हैं कि किन महत्वपूर्ण रचनाकारों ने तेलुगु भाषा में महत्वपूर्ण रचनाएँ की।

5. 8. बोध प्रश्न

1. वेदम वेंटराय शास्त्री के साहित्यिक कार्य के बारे में लिखिए।

2. धर्मवरण, कृष्णामाचर्युलु ने नाटक रचना के अलावा इस क्षेत्र में कौन-सा महत्वपूर्ण कार्य किया?

3. तेलुगु साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए वेंकटरामूर्ति पंतुलु ने क्या कार्य किया ?

4. पानगति लक्ष्मी नरसिंहाराव ने साहित्य द्वारा क्या कार्य किया?

5. चिलकंमत लक्ष्मीनरसिंहम ने नेत्र खाने के बाद भी साहित्य सेवा की। राष्ट्र के लिए किए गए उनके कार्यों को चार पंक्तियों में लिखिए।

5. 9. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा ।

2. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

6. हिन्दी – तेलुगु का समकालीन साहित्य

6.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में हम तेलुगु भाषा साहित्य के इतिहास के बारे में, तेलुगु - हिन्दी साहित्य के युग प्रवृत्तियों के बारे में, तेलुगु के साहित्य के अंश और साहित्यकारों के बारे में जान चुके हैं । इस अध्याय में तेलुगु - हिन्दी साहित्य के युगों की समानता-वैषम्य के बारे में जान पायेंगे । इस अध्याय को पढ़ने के बाद

- तेलुगु - हिन्दी साहित्य के आदिकाल के बारे में,
- मध्यकाल के बारे में,
- आधुनिक काल के बारे में जान पायेंगे ।

रूपरेखा

6.1. प्रस्तावना

6. 2. भाषाओं की उत्पत्ति डावं विकास

6. 3. लिपियों की उत्पत्ति और विकास

6. 4. अज्ञात युग

6. 5. भक्तिकाल - प्रबंध युग

6. 6. रीतिकाल - संधियुग

6. 7. आधुनिक तेलुगु - हिन्दी साहित्य के काव्यधारा के प्रमुख प्रवृत्तियाँ

6.8. सारांश

6.9. बोध प्रश्न

6.10. सहायक ग्रंथ

6.1. प्रस्तावना

हिन्दी के राजभाषा घोषित करने के बाद उसका महत्व बढ़ गया है । परंतु उसके साथ ही साथ अनेक समस्यायें भी उत्पन्न हो गई हैं । उनमें मुख्य समस्यायें, प्रशासन की भाषा, विश्व विद्यालयों में माध्यमिक भाषा और न्यायालय की भाषा कौन- सी हो? इत्यादि है । यह भी पूर्ण रूप से अभी तक निश्चय नहीं हो पाया कि राजभाषा और प्रादेशिक भाषाओं का क्या संबंध हो और उनके कार्य-क्षेत्र कहाँ तक सीमित हो । किंतु यह कदापि बांधनीय नहीं है कि राजभाषा हिन्दी का महत्व बढ़ जाने के कारण प्रादेशिक भाषाओं के विकास में कोई अवरोध उपस्थित हो । ऐसे संक्रांति - काल में राजभाषा एवं प्रादेशिक भाषाओं को समृद्ध बनाने के लिए साहित्यिक प्रदान की अत्यंत

आवश्यकता है । सभी भाषाओं के उत्तम ज्ञान- भंडार से रूपांतर हद्वारा अपनी- अपनी भाषाओं को सुसंपन्न उन्हें परिवृष्ट बनाना होगा । इस कार्य को सुसंपन्न करने के लिए राज भाषा और प्रादेशिक भाषाओं का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है । दोनों साहित्यों की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं से परिचित होने पर ही एक भाषा एवं साहित्य की उत्तम कृतियों को दूसरी भाषा एवं साहित्य में लाने का प्रयत्न किया जा सकता है । अतः दोनों भाषा एवं साहित्यों से संबंधित गवेषणात्मक, प्रामाणिक एवं तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य सा हो गया है । इस दृष्टि से देश की एकता एवं राष्ट्रीय जीवन की एकता के लिए यह आवश्यक हीं नहीं, अनिवार्य भी है ।

6.2. भाषाओं की उत्पत्ति उड़ाव विकास

तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा है और हिन्दी आर्य परिवार की । थे दोनों भाषाएँ, जन्म से भिन्न परिवारों के होते हुए भी अनेक विषयों में समानता रखती हैं । आज के भारत में संख्या की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी के बाद तेलुगु बोलनेवालों का नंबर आता है? उत्तर भारत में हिन्दी भाषी अधिक है तो दक्षिण भारत में तेलुगु भाषा-भाषी । किन्तु कुछ विद्वान तेलुगु को आर्य-परिवार की भाषा मानते हैं । लेकिन कुछ विद्वान जैसे श्री कोराड़ रामकृष्णस्य आदि ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि तेलुगु द्रविड भाषा परिवार की है । तेलुगु को आर्य - भाषा परिवार की भाषा मानने में यह भी एक कारण कारण हो सकता है कि आन्ध्र के पूर्वज आर्य थे । हरिवंश पुराण के कथानुसार कृष्ण से लडनेवाले चाणूर मल्लू आंध्र थे । ये आर्य क्षत्रिय थे । उन्होंने अपने राज्य को दक्षिण में गोदावरी तथा कृष्णा नदी के मध्य प्रदेश में स्थापित किया था । इनकी भाषा प्राकृत - जन्य थी । कालांतर में दक्षिण की संस्कृति एवं भाषाओं के प्रभाव के कारण इसमें भी परिवर्तन हुए । यही कारण है कि आज तेलुगु में संस्कृत भाषा के शब्दों की बाहुल्यता होने पर भी द्रविड - परिवार के निकट है । उत्तर और दक्षिण दक्षिण के बीच में स्थित होने के कारण आन्ध्र प्रदेश में आर्य एवं द्रविड संस्कृतियों का संगम होकर अपनी विशिष्टता का परिचय दे रहा है ।

हिन्दी भाषा के संबंध में ऐसा विवादास्पद विषय कोई नहीं है । संस्कृत के बाद प्राकृत, और प्राकृत के सक्छ भी अनेक अपभ्रंश हुए । कालांतर में वे भी साहित्यिक रूप को प्राप्त करते गये । इस प्रकार भाषा में गतिशीलता के कारण शौरसेनी अपभ्रंश सैं जो भाषा निकली वह कई रूपों में कई प्रांतों में व्यवस्त होने लगी । यही कारण है कि हिन्दी के प्रारंभिक मूल रूप अपभ्रंशों थे को मैथिली, अवधी, व्रज और राजस्थानी आदि भाषा में अवतरित हुई । आज इन सब भाषाओं के साहित्यों को हिन्दी साहित्य के नाम से जाना व माना जाता है ।

6.3. लिपियों की उत्पत्ति और विकास

यह सर्व विदित है कि सभी भारतीय लिपियों का उद्गम ब्राह्मी लिपि ही है । मौर्य काल में ही भारतीय लिपि का प्रप्रथम परिचय लोगों को हुआ है । उसके पूर्व लिपि के अस्तित्व का हमें कोई आधार अथवा प्रमाण नहीं मिलता । कुछ भाषा विज्ञान शास्त्रियों का कथन है कि प्रारंभ में समस्त भारतीय भाषाओं की एक ही लिपि थी । वही बाद में मांडलिक-भेदों के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हुई । यही ब्राह्मी लिपि के प्रारंभिक काल में आन्ध्र-कर्नाटक लिपि में परिवर्तित हुई । यही कारण है कि आज भी तेलुगु और कर्नाटक लिपियों में बहुत ही साम्य दिखाई देता है । तमिल लिपि में अल्पप्राण और महाप्राण के भेद दिखाई नहीं देते । 'क' वर्ग में क, ख, ग, घ इन चारों वर्णों के लिए 'क' ही प्रयुक्त होता है । वैसे ही अन्य वर्णों की बात भी है । अत: तेलुगु लिपि में मौथलिपि से उपर्युक्त वर्णों के लिए आवश्यक अक्षरों की को ग्रहण कर अपनी लिपि को आन्ध्रों ने पूर्ण बनाया है ।

इस प्रकार समय समय पर अपनी लिपि में आवश्यक चिह्न जोड़ते - जोड़ते इसे स्वरांत - भाषा बनाया गया है । तेलुगु सुनने में अत्यंत मधुर होती है । इसलिए देशी विद्वानों ने ही नहीं, अपितु ब्रौन पंडित जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने भी तेलुगु भाषा की 'Italian of the east' प्राच्य देशों की इटली भाषा कहकर बड़ी प्रशंसा की है ।

6.4. अज्ञात युग

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों के आदिकाल के ग्रंथ आज तक समग्र रूप में उपलब्ध नहीं हुए हैं । अभी तक उस काल का साहित्य अंधकार के गर्भ में लीन है । इसलिए तेलुगु भाषा की उत्पत्ति का समय निर्धारित करना कठिन ही नहीं, अपितु असंभव-सा प्रतीत होता है । 7वीं शताब्दी के पूर्व आंध्र में प्राकृत भाषा का ही बोलबाला था । राजा - महाराजाओं के दरबारों में प्राकृत और संस्कृत भाषाओं की ही स्थान था । देशी भाषा, तेलुगु का वहाँ पर आदर न था । कुछ भी हो, तेलुगु में 10 वीं शताब्दी के पूर्व का कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है । जो कुछ सामग्री मिली है, वह शिला-लेखों में अंकित है । मौर्य- युग के पश्चात् और दसवीं सदी के पूर्व आन्ध्र में बौद्ध व जैन धर्मों का उत्कर्ष हुआ और पतन इसी बीच अन्य - धर्मावलंबियों के साथ धार्मिक विशेष के कारण बौद्ध व जैन साहित्य जो तेलुगु में रचा गया था, जला दिया गया । इसमें हिन्दू-कवियों द्वारा रचित साहित्य भी इसी प्रवृत्ति के कारण नष्ट हो गया है । हाँ, गुणाढ्य विजयादित्य तथा विजयवाडा के शासक युद्धमालुं के शिक्षा - लेखों द्वारा हम उस समय की कविता का परिचय पा सकते हैं । वे शिक्षा-लेख भी पद्य में अंकित होते थे । किंतु कुछ विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार के पद्य-साहित्य के अतिरिक्त असंख्य पद एवं गीतों की भी रचना हुई थी । इसी समय तेलुगु में देश - कविता और मार्ग - कविता, जिसमें संस्कृत शब्दों की बाहुल्यता थी) के रूप में काव्य के दो रूप जनता के सामने आये ।

हिन्दी के संबंध में भी यही कठिनाई है । प्रायः हर एक भाषा गीतों के रूप में ही प्रारंभ होती है । गीत और पद ही साहित्य के प्रारंभिक रूप है? हिन्दी का प्रथम कवि व ग्रंथ के संबंध में अभी विद्वानों में मत - भेद है । क्योंकि जो ग्रंथ उपलब्ध है, वे अपभ्रंश- भाषा में हैं । अत: अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी कहाँ तक मानें, यह विवादास्पद है । किंतु हिन्दी के विद्वानों का कथन है कि हिन्दी भाषा पर उस युग में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक रहा है । महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार हिन्दी का प्रथम कवि बौद्धाचार्य सरहपा है । थे 8वीं शताब्दी में विद्यमान है । थे । उनके तीन काव्य भी उपलब्ध हैं । इनके उपरांत अन्य कवियों में स्वयंभू कवि, कवि पुष्पदंत, शांतिया, हेमचंद्र सूरि, जैनाचार्य मेरुतुंग मेरुतुंग और विद्यापति के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं । विद्यापति ने अपभ्रंश भाषा तथा मैथिली दोनों भाषाओं में रचनाएँ कर भावी कवियों का मार्ग अत्यंत सुगम एवं प्रशस्त किया है ।

तेलुगु और हिन्दी के प्रारंभिक युग के काल - क्रम में भी काफी समानता है । तेलुगु के पुराण युग सन् 1000-1380 है तो वीरगाथा. काल वि. स. 1050-1375 तक माना जाता है । दोनों युगों के आविर्भाव का प्रधान कारण धर्म और देश की रक्षा कहा जा सकता है । उस समय जैन और बौद्ध धर्मों का प्रचार प्रसार कम होता जा रहा तक की दोनों धर्मों का स्वरूप भी बहुत बिगडा हुआ था । जिस समय दक्षिण भारत में जैन और बौद्ध धर्मों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, उसी समय उत्तर भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे । यदि उस समय दक्षिण में बिगडे हुए जैन और बौद्ध-धर्मों से लोगों को बचाकर वैदिक धर्म को पुन: प्रतिष्ठापित करने का प्रश्न था तो में मान, प्राण, राज्य और धर्म की रक्षा का प्रश्न था । इसलिए दक्षिण के नरेश, धर्माचार्य एवं पंडित तथा कवि अपने धर्म की रक्षा के लिए उपाय ढूँढकर उन्हें अमल करने लगे तो उत्तर में विदेशी लुटेरों एवं शासकों को रोकने का प्रयत्न करने लगे थे । अतः उत्तर के

कवि व पंडित जो राजदरबारों में थे, वे अपने कर्तव्य के पालन के लिए के मौदान में भी उत्तर पडते थे। इन कवियों की अधिकांश घटनाएँ कल्पित एवं अतिशयोक्ति - पूर्ण है। इन कवियों ने अपने आश्रय- - दाताओं की खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा का पुल बाँध दिया है। हिन्दी और तेलुगु की प्रारंभिक रचनाएँ राजाओं के दरबार में ही रची गई। दोनों साहित्यों का सूत्र -पात राज दरबारों में ही हुआ। परंतु दोनों की परिस्थिति में भिड़ंता है।

- **आदिकाल की साम्यता और भिन्नता**

1. दोनों भाषाओं के कवियों को इस युग में राजाश्रय प्राप्त था।

2. आन्ध्रा में बौद्ध एवं जैन धर्मों के बिगड़े हुए संप्रदायों से वैदिक धर्म की जहाँ रक्षा करनी पड़ी, वहाँ वीरशैव मत के साथ टकर लेना पड़ा, वैसे ही उत्तर भारत में जहाँ विदेशी मुसलमानों से जाति, धर्म एवं देश की रक्षा का प्रश्न था, वहीं भारत के राजाओं में आपसी फूट का भी सामना करना पड़ा।

3. हिन्दी में डिंगल एवं अपभ्रंश भाषा में इस युग में रचनाएँ की गई तो आन्ध्र में तेलुगु भाषा में मार्ग-कविता और देशि कविता में रचनाएँ हुई।

4. इसी युग में तेलुगु में महाभारत, रामायण, मार्कंडेय पुराण, हरिवंश इत्यादि अनेक पुराणों का अनुवाद तेलुगु में हुआ। फिर भी ये सब हू-ब-हू अनुवाद न होकर स्वतंत्र काव्य-से लगते हैं। इस युग में ही करीब-करीब सभी पुराणों का तेलुगु में अनुवाद होने के कारण इस युग का नामकरण ही ‘पुराण युग’ किया गया है। जैसे कि हिन्दी में वीर रस प्रधान काव्यों की अधिकता के कारण इस युग का नाम ‘वीर गाथाकाल’ रखा गया है।

5. हिन्दी में ‘रासो’ काव्यों के अतिरिक्त इस युग में ‘आल्हा खंड’, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, विद्यापति पदावली आदि आयीं। उसी भाँति तेलुगु में शतक, प्रबंध काव्य तथा पुराणों में वर्णित आख्यानों पर स्वतंत्र - काव्य भी रचे गये।

6. यह तेलुगु का आदिकाल होते हुए भी सभी दृष्टियों से पूर्ण कहा जा सकता है। कई महाकवियों का प्रादुर्भाव हुआ। दर्जनों काव्य रचे गये। जब कि हिन्दी - साहित्य में ऐसे ग्रंथों की सृष्टि बड़ी देरी से दिखाई देती है। ‘रीतिकाल’ तक याने 17 वीं शताब्दी तक हिन्दी में लक्षण - ग्रंथ नहीं के बराबर है। इस दृष्टि से तेलुगु का प्रथम युग था आदि काल भी प्रौद्ध साहित्य से परिपूर्ण कहा जा सकता है।

7. भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी के वीरगाथा काल की अपेक्षा तेलुगु का पुराण-युग काफी विकसित एवं पूर्ण माना जा सकता है।

8. विषय वैविध्य की दृष्टि से भी पुराण युग परिपूर्ण कहा जा सकता है। रामायण कथा को विभिन्न छंदों में, विभिन्न रूपों में लिखा गया था। उत्तर भारत में दिल्ली, अजमीर कन्नौज इत्यादि केन्द्र जैसे कवियों के आश्रय-स्थान थे वैसे ही आन्ध्र में भी थी। यहाँ के राजाओं के प्रोत्साहन से ही अनेक काव्य रचे गये। दरबारों मैँ कवियों का सम्माननीय स्थान था। उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता थी।

9. पुराण युग के आन्ध्र साहित्य की सबसे विलक्षण विभूति उसका शैव-साहित्य है, जिससे हिन्दी साहित्य एकदम वंचित रह गया। आंध्र-साहित्य की मूल प्रेरणा शैव-धर्म में ही पायी जाती है।

6.5. भक्तिकाल और प्रबंध-युग [प्रबंधयुग ई-सन् 1381-1650; भक्तिकाल वि. स. 1376-1700]

तेलुगु और हिन्दी साहित्यों के बीच करीब 50 साल का अंतर दिखाई देता है। लेकिन हिन्दी में ई.वीं सन् के स्थान पर विक्रमी संवत् का प्रयोग हुआ है। विक्रमी संवत् में से 57 वर्ष घटाने पर दोनों का लगभग एक ही समय ठहरता है। तेलुगु के पुराण - युग में अनेक विषयों के ग्रंथ रचे गए। प्राय: समस्त प्रसिद्ध संस्कृत पुराणों का अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत हुआ। किसी पुराण का छायानुवाद है तो किसी का भावानुवाद और किसी पुराण के अनुकरण पर ही काव्य रचना हुई। परंतु हिन्दी की यह बात नहीं। हिन्दी में भक्तिकाल स्वर्ण-युग माना जाता है तो तेलुगु में प्रबंध-युग अथवा कृष्ण देवराय युग। कृष्ण देवराय के दरबार में अष्ट दिग्गज नाम से विख्यात आठ महाकवि थे। आठों ने अद्वितीय ग्रंथ राज्यों की सृष्टि की है। इस युग में अनेक महाकाव्य रचे गये।

हिन्दी - साहित्य में भक्तिकाल (1375 - 1700) स्वर्ण युग माना जाता है किंतु तेलुगु वाङ्मय में इस प्रबंध युग को दो कालों में विभाजित किया गया है। वे है -

1. रेड्डी युग (1380 - 1500)
2. कृष्णदेवराय युग व स्वर्णयुग (1500-1650)

उपर्युक्त लेलुगु वाड्मय के दो युगों के साहित्य की समीक्षा इस संक्षेप में करेंगे। क्योंकि प्रत्येक साहित्य की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। एक साहित्य का दूसरे साहित्य के साथ उसी काल को दृष्टि में रखकर विभाजन करना संभव नहीं है। उत्तर भारत में 1376 से 1700 तक की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। दक्षिण में उस समय उत्तर की भाँति विदेशियों के शासन में कई तरह की यातनाएँ उठानी न पड़ीं। यहाँ पर अशांति और गृह -कल्लोलों का त्याम्राज्य न था। आन्ध्रा में रेड्डि- युग, रायलुयुग एवं- इन दोनों युगों में कवियों को राजाश्रय प्राप्त था। कवियों का ऐसा सम्मान होता था कि भारत के इतिहास में कहीं भी हमें ऐसे उदाहरण उपलब्ध नहीं होते हैं।

उत्तर भारत में 1376 के बाद 1700 तक का समय मुगल तथा अन्य मुस्लिम शासकों का समय था। हिन्दू राजा तो निवर्थ हो अपनी प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ साबित हुए थे। ऐसी दशा में वहाँ की प्रजा पूर्ण असंतुष्ट थी। वीरगाथा काल के समय में तो हिन्दुओं के देव मंदिर उन्हीं की आँखों के सामने खंडहर बना दिये गये थे। उनके तन, मन और धन की रक्षा न हो सकती थी। उस समय हिन्दू-जनता की दशा दयनीय थी और वह मुस्लिम शासकों के आतंक से भारत थी। कबीर, जायसी जैसे कुछ कवियों ने हिन्दू - मुस्लिम जनता के बीच मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न किया। हिन्दू भी समझ गये थे कि मुस्लिम शासकों के विरोध करने पर कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसी निराशा से पूरित विचार धारा लोगों में प्रबल होती जा रही थी। तब इन दोनों जाति एवं धर्मों को निकट लाकर मैत्री-पूर्ण समझौता कराने की आवश्यकता थी। यह कार्य ऐसे ही महात्मा कर सकते थे जो दोनों धर्मावलंबियों के लिए प्रिय हों और जिन्होंने दोनों की सद्भावना प्राप्त कर ली हो। ऐसी दशा में कबीर का आविर्भाव हुआ। उन्होंने देखा और समझा कि शासक और शासिलों के बीच ईर्ष्या और द्वेष की खाई दिन ब दिन बढ़ती जा रही है। इसका एक मात्र कारण धर्म है। धर्म संकुचित भावों से और कट्टरता से प्रेरित है। इस धर्म में मानवता, प्रायः लुप्त-सी हो गयी है। अतः

कबीर ने इन दोनों धर्मों को संकुचित दायरों से ऊपर उठाकर दोनों जातियों के हृदयों में परिवर्तन लाने के लिए अथक परिश्रम किया । उत्तर भारत में कबीर के आविर्भाव के पूर्व ही दक्षिण में अनेक धर्माचार्थी का उद्भव हुआ था । आठवी शताब्दी में तो शंकराचार्य, दसवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य, बारहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य तथा मध्वाचार्य इत्यादि पैदा हुए थे । इस तरह उत्तर-दक्षिण भारत में भक्ति भावना की प्रदुर्भाव से साहित्य में भी विभिन्न प्रकार के काव्य आडा थे ।

- **रायलुयुग (1500-1650)**

रेड्डियुग के उपरांत रायलुयुग विशेष महत्व रखता है । रेड्डि राजाओं के समय तेलुगु - साहित्य भलीभाँति पल्लवित एवं पुष्चित हुआ में फल प्राप्ति कर सका । राजा कृष्णदेवराय स्वयं कवि व कविघोषक थे । वे तेलुगु एवं संस्कृत भाषा के पारंगत थे । कन्नड़, व तमिल भी जानते थे । इनके दरबार में विविध प्रकार भाषाओं के कवि, चित्र कलाकार, नृत्यकार, शिल्पकार रहते थे । हिन्दी के भक्ति- काल स्वर्णयुग है तो तेलुगु के कृष्णदेवरायन्तु युग भी साहित्य के स्वर्णयुग कहते थे ।

6.6. रीतिकाल - वि.सं 1700- 1900

[दक्षिणांध्र युग ई. स. 1650 – 1800; संधियुग - ई. सं. 1800 – 1900]

हिन्दी का रीतिकाल संवत् 1901 से 1900 तक माना जाता है । साहित्य में इस अवधि में 1650 ई. से 1800 तक दक्षिणांध्रयुग तलुगु और 1800 ई. से 1900 ई. तक संधि युग माना जाता है । अत: इसमें उन वर्ष जोडने पर विक्रमी संवत् बन जाता है । इसलिए लगभग इन युगों मैं समानता पायी जाती है । विषय व रचना-विधान की दृष्टि से दोनों युग पूर्ण रूप से भिन्न मार्ग पर चले हैं । 1700 से 1900 तक हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का लक्षण युग माना जाता है तो तेलुगु में प्रारंभ से ही लक्षण-ग्रंथों की रचना होती आयी । अतः यह कहना होगा कि तेलुगु - साहित्य में लक्ष्य एवं लक्षण ग्रंथों की रचना होती आयी । अत: यह कहना होगा कि तेलुगु - साहित्य में लक्ष्य एवं लक्षण ग्रंथों की रचना क्रमश: होती आयी है । हिन्दी में बिहारी बिहारी, देव, पद्माकर जैसे प्रतिभाशाली कवि हुए हैं ।

तेलुगु का दक्षिणांध्रयुग भी शायल: युग की भाँति समृद्ध रहा । राजा रघुनाथ नायक ने तंजाऊर के अपने दरबार में तेलुगु, संस्कृत एवं संगीत के विद्वानों का पोषण कर साहित्य और संगीत की स्तुत्य सेवा की । वे स्वयं कवि और संगीतज्ञ थे । उनके दरबार में अनेक कवियों के साथ कवि कवजियार कवि कवइत्रियाँ भी थी । रघुनाथ नायक के पुत्र विजय राहाव नायक भी कवि व पंडित थे । थे भी इन्होंने 'यक्षगान' लिखकर तेलुगु साहित्य में एक नयी शाखा की पृष्टि की । 'यक्षगान' के साथ कुशविंजी नामक देशी रूपकों का प्रादुर्भाव इसी समय में हुआ । विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद मदुरा, तंजाऊर, चंद्रगिरि आदि दक्षिण के केन्द्रों में तेलुगु साहित्य का अच्छा पोषण और विकास हुआ है । इन राज्यों के पतन के बाद भडुस, तेलुगु कवियों को राजाश्रय प्राप्त नहीं हुआ । अंग्रेजों के आगमन के बाद एक शताब्दी तक तेलुगु साहित्य की प्रगति रुक-सी गयी ।

1800 से 1900 का समय तेलुगु साहित्य का संधियुग कहा गया है । इस समय में तेलुगु साहित्य के शतक साहित्य का विकास हुआ तो हिन्दी साहित्य में सतसई' परंपरा का विकास हुआ । हिन्दी में बिहारी सतसई, वृंद - सतसई आदि जैसे बहुत प्रसिद्ध है, उसी भाँति तेलुगु में दर्जनों शतक प्रसिद्ध है । उनका बहुत व्यापक प्रचार हुआ है ।

ये शतक पहले शक्ति प्रधान होते थे। धीरे-धीरे नीति, धर्म, सदाचार इत्यादि के प्रचारार्थ भी रचे गये हैं। अक्सर इन शतकों के रचयिता धर्म के आचार्य, संत, योगी अथवा महापुरुष होते थे। वर्तमान युग में आते आते साधारण लोग भी शतक की रचना करने लगे हैं। इस युग में हिन्दी में 'पेद' नाम से प्रसिद्ध गीत ही तेलुगु में 'पाटा', 'कोर्तन', 'संकीर्तन', अथवा 'गथ' नाम से प्रचलित है। गीत की तीन विशेषताएँ मानी जाती है; तन्मयता, संगीतात्मकता तथा संशिप्तता । इस समय के भक्त कवियों मैं के पर्दों में संगीत एवं साहित्यों, लय और वर्णों का ऐसा गंगा-जमुना संगम हुआ है कि वे पद और उनके रचयिता अमर बन गये हैं।

6.7.आधुनिक तेलुगु और हिन्दी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक हिन्दी और तेलुगु साहित्यों का उदय करीब करीब एक ही समय में हुआ। इसलिए दोनों वाङ्मयों की प्रवृत्तियों में समानता का होना भी सहज है। युग की परिस्थितियों का प्रभाव ज्यों-ज्यों साहित्य पर पड़ता गया त्यों-त्यों वे भावनाएँ भी कविता, कहानी इस इत्यादि रूपों में मुखरित हुई। बीसववीं शति के प्रथम दशाब्द में राजा राममोहन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। और स्वामी दधानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द इत्यादि के प्रबोधों द्वारा निद्राण हिन्दू जाति जागृत हुई और लोकमान्य ने हम में प्राचीन संस्कृति की ओर प्रवृत्त कर आत्मविश्वास एवं आत्माभिमान की भावनाएँ पैदा कीं। इधर राष्ट्रीय आंदोलन ने भी कवि को अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणाम स्वरूप साहित्य में प्राचीन और आधुनिक भावनाओं एवं विचारधाराओं का सुन्दर समन्वय हमें दृष्टि गोचर होता है।

राजा राममोहन राय का प्रभाव तेलुगु साहित्य के युग निर्माता थी वीरेशलिंग पंतुल पर पड़ा। श्री वीरेशलिंगम जी अपने समय के बहुत बड़े सुधारक थे। इन्होंने समाज की सभी कुरीतियों को साहित्य द्वारा दूर करने का बीड़ा उठाया। समाज सुधार के कार्यक्रम में साहित्य को साधन बनाया। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, स्त्री-शिक्षा इत्यादि आंदोलनों द्वारा इन्होंने आन्ध्र का बहुत बड़ा उपकार किया है।

साहित्यिक भाषा को छोड़ जन साधारण की बोली में काव्य रचना कर सर्व-साधारण तक अपने सुधारवादी विचारों को पहुंचाया। पत्र-पत्रिकाएं चलाकर सुधारवादी आन्दोलन को बल प्रदान किया और सदियों से समाज द्वारा कुचली जानेवाली नारी- जाति का उद्धार किया। महिलाओं को साक्षर बनाने, उनमें समाज की अन्धरूदियों का सम्मिलित रूप से सामना करने का बल एवं आत्मविश्वास पैदा किया। यही नहीं भाषा, साहित्य इत्यादि के क्षेत्र में भी श्री वीरेशलिंगम जी ने जो कार्य किया है, वह अद्भुत एवं अनुपम है।

हिन्दी साहित्य में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा आचार्य महावीर प्रसादजी ने जो कार्य किया है, वह समस्त कार्य तेलुगु साहित्य के लिए अकेले श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने किया है। इन्होंने तेलुगु साहित्य का प्रथम उपन्यास, प्रथम प्रहसन, प्रथम जीवनी, प्रथम नाटक की रचना की पत्र-पत्रिकाएँ चलाकर सभा-समाजों की स्थापनाकार, तेलुगु साहित्य की उन्नति में अच्छा योगदान दिया है। अंग्रेजी में गद्य एवं पद्य के जो विभिन्न अंगों का जन्म और विकास होने लगा उन सब का श्री गणेश बैतुलुजी ने तेलुगु में भी किया।

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाँति उन्होंने कई लेखकों को प्रकाश में लाडा भारतेन्दु की भाँति कवि गोष्ठियों चलाकर, नाटकों का प्रदर्शन कर आन्धावासियों में साहित्य के प्रति रुचि पैदा की। श्वी पैतुत्लु एक युग प्रवर्तक निर्माता थे। इनका प्रभाव तत्कालीन समाज पर ऐसा पड़ा कि कई लेखकों को इन से प्रेरणा मिली। पंतुलुजी समाज-सुधार के साथ व्यक्ति-सुधार और स्वतंत्रता पर भी जोर देते रहे। हिन्दी के प्रारंभिक युग में भी हमें यही भावनाएँ

दृष्टिगोचर होती हैं। भारतेन्दु का सुधारवादी आन्दोलन, भाषा और स्त्री-शिक्षा आन्दोलन को हम श्री वीरेशलिंगम पंतुलु में देख सकते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार जोरों से होने लगा। अपनी भाषा, अपना साहित्य, और अपनी संस्कृति के प्रति लोगों में अनुराग बढ़ने लगा। प्राचीन और नवीन भावना एवं आदर्शों के बीच संघर्ष होने लगा। इस संक्रांतिकाल में भारत की भाषाओं में जो साहित्य आया वह प्रबोधात्मक तथा प्राचीनता का गौरव गान - प्रधान था। इस युग के प्रमुख कवियों में भी दि ब्रें थे भावनाएँ तो हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री 'अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध' और राष्ट्रकवि 'मैथिलीशरण गुप्त' जी में देखी जा सकती है। इन दोनों कवियों ने भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक इतिवृत्तों को लेकर काव्य रचना की, हिन्दी को गौरवमय स्थान दिलाया। गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना तो हम 'अभिनव तिक्कना' नाम से विख्यात श्री तुम्मल सीताराम मूर्ति की कविता में पाते हैं। इनका 'राष्ट्रगान' गुप्त जी की 'भारत -भारती' की भाँति विशेष प्रसिद्ध है।

हिन्दी में जिस प्रकार विद्विवेदी युग के उपरांत छायावाद और रहस्यवाद का आगमन हुआ, उसी भाँति तेलुगु में भाव कविता का प्रादुर्भाव हुआ। अभ्युदय कविता के क्रम में तेलुगु और हिन्दी के कवियों में श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, नवीत, पंत, दिनकर नागार्जुन इत्यादि प्रख्यात है तो तेलुगु में श्री श्री, नारायणबाबू, दाशरथी, नारायण रेड्डी आदि प्रमुख है।

6.8. सारांश

उत्तर भारत में हिन्दी का जो स्थान है. उसका प्रभाव दक्षिण भारत की भाषाओं में तेलुगु पर अधिक मात्रा में देखने को मिलती है। तेलुगु और हिन्दी दोनों भाषाओं का साहित्य एक ही समय में आरंभ हुआ। एक प्रांत का प्रभाव दूसरे प्रांत पर पड़ा। एक भाषा का प्रभाव दूसरे भाषा पर पड़ा। एक साहित्य के प्रक्रियाओं के आधार है दूसरी साहित्य पर की नाई नाई प्रक्रियार्थे जन्म लिकर कर ली थी। इस इकाई में हम अज्ञात युग से लेकर आधुनिक काल के स्वतंत्रता आन्दोलन तक आए साहित्य रूप को देख चुके हैं।

हिन्दी के अज्ञात युम वीरगाथा काल और तेलुगु के अज्ञान युग समान प्रकार की साहित्य को जन्म दिया तो, का हिन्दी के भक्ति काल, तेलुगु के प्रबंध युग के भक्ति साहित्य का जन्म दिया था। समान राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ और आर्थिक परिस्थितियों के कारण, विदेशी आक्रमणों के कारण सारे राष्ट्र में एक जैसा साहित्य पैदा हुआ था। आधुनिक काल में स्वतंत्रता आन्दोलन के जरिए जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उनका प्रभाव सभी प्रांतों के प्रजा में समान रूप में पड़ा। इसलिए साहित्य में भी समान शैली, समान प्रक्रियाओं को हम देख सकते हैं।

6.9. बोध प्रश्न

1. हिन्दी – तेलुगु साहित्य के प्रारंभिक काल का परिचय दीजिए।

2. उत्तर के हिन्दी साहित्य और दक्षिण के तेलुगु साहित्य के समान साहित्यिक प्रक्रियाओं के बारे में चर्चा कीजिए।

3. हिन्दी के भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहते हैं तो तेलुगु साहित्य के प्रबंध युग को भी स्वर्ण युग कहते हैं। चर्चा कीजिए।

6.10. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

7. हिन्दी तेलुगु - एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. एम. मजुला

7. आन्ध्र में मौलिक हिंदी लेखन- पद्य साहित्य

7.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम हिन्दी- तेलुगु का समकालीन साहित्य का परिचय के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। अब इस इकाई के अंतर्गत तेलुगु भाषी हिन्दी में मूल मौलिक लेखन कार्य किस प्रकार शुरु किया और आन्ध्र में पद्य साहित्य के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

7.1. प्रस्तावना

7.2. आन्ध्र में हिन्दी लेखन

7.3. आन्ध्र में हिन्दी लेखन-लेखकाधारित स्वरूप

7.4. आन्ध्र में हिन्दी लेखन का ऐतिहासिक क्रम, युग-विभाजन, विकास

7.5. आन्ध्रों के हिन्दी लेखन का वर्गीकरण

7.6. आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य: विस्तृत वर्गीकरण

7.7. आन्ध्रों की हिन्दी कविता

7.8. सारांश

7.9. बोध प्रश्न

7.10. सहायक ग्रंथ

7.1. प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत आप आन्ध्र में हिन्दी लेखन-विकास और गति आन्ध्र में हिन्दी लेखन- स्वरूप और समृद्धि के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। आन्ध्र में हिन्दी लेखन का ऐतिहासिक क्रम-आरंभ के बारे में जानेंगे। इसके साथ-साथ युग-विभाजन, विकास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.2. आन्ध्र में हिंदी लेखन

हिंदी लेखन हिंदी तथा हिंदीतर भाषी दोनों की देन माना जा सकता है। हिंदी भाषी हिंदी प्रदेश में रहते हुए जो लेखन करते हैं वह हिंदी लेखन माना जाता है। उसी रूप में हिंदी प्रदेश से बाहर रहते हुए हिंदी लेखन करनेवालों को हिंदी लेखक ही माना जाना चाहिए। उनके सृजन को हिंदी लेखन मान लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में हिंदी भाषा में जो लिखित प्रयास किए गए, उन्हें हिंदी लेखन के अंतर्गत मानना चाहिए। इसमें हिंदी भाषियों का लेखन भी शामिल है। साथ ही हिंदीतर भाषी जो हिंदी सीखकर हिंदी में लेखन करता है, उसे भी हिंदी लेखन ही मान लेना चाहिए। आन्ध्र में प्राप्त होने वाला अधिकांश हिंदी लेखन इस दूसरे प्रकार का हिंदी लेखन है। जो किसी हिंदी भाषी हिंदी लेखन के लिए

दूसरा नहीं है। हिंदीतर भाषियों की इस हिंदी देन को विशिष्ट मान लेना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आन्ध्र हिंदी प्रेमी प्रदेश व हिंदी अनुकूल प्रदेश होने पर भी हिंदीतर प्रदेश ही है। आन्ध्रों के द्वारा लिखा गया हिंदी साहित्य हिंदी लेखन के अंतर्गत ही आता है। आन्ध्र में हिंदी प्रदेश से आकर बसे हुए लोग भी हैं।

आन्ध्र के ऐसे मूल निवासी भी हैं, जिन्होंने अपनी इच्छा से या स्वेच्छा से हिंदी सीखकर हिंदी में प्रतिभा प्राप्त करके लेखन में लगे हैं। ऐसे लेखक ही आन्ध्र में हिंदी लेखन के मूल अधिकारी हैं। दूसरे प्रकार के अंतर्गत हिंदी प्रदेश से आकर आन्ध्र में बस कर आन्ध्रों के जीवन को आधार बनाकर लिखनेवाले हिंदी लेखक आयेंगे। इसी वर्ग के अंतर्गत आन्ध्र में बसे हिंदी प्रदेश की एक-दो पीढ़ी के लोग, जिनका जन्म आन्ध्र में ही हुआ तथा स्थानीय रंगत में रंग गए लोग आयेंगे। इनको तो हिंदीतर भाषी नहीं कह सकते हैं। बल्कि आन्ध्र के जीवन को हिंदी के माध्यम से अभिव्यक्त करने में इनकी भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इन दोनों के पीछे का मुख्य उद्देश्य यह है कि सिर्फ आन्ध्र में लिखा गया हिंदी साहित्य आन्ध्रों का हिंदी साहित्य के अंतर्गत नहीं आयेगा। बल्कि आन्ध्रों के जीवन को प्रतिबिंबित करनेवाला तथा आन्ध्र में लिखा गया साहित्य ही आन्ध्रों का हिंदी साहित्य मान लेना अत्यधिक उचित है। हिंदी लेखन में तथा हिंदी साहित्य में इसका अधिक वैशिष्ट्य है। क्योंकि यह तो हिंदी में लिखा गया साहित्य है। इसके साथ-साथ हिंदी प्रदेश के बाहर के जीवन को हिंदी में अभिव्यक्त करनेवाला साहित्य है।

7.3. आन्ध्र में हिंदी लेखन - लेखकाधारित स्वरूप

आन्ध्र हिंदी लेखन के लिए अनुकूल रहा है। फिर भी आंध्रेतर भाषा में लेखन करते समय अनिवार्य रूप से लेखकों के सामने कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इनकी वजह से उनका साहित्य भी विशिष्ट हो जाता है। यह राजनीतिक, सामाजिक एवं भाषाई दृष्टि से भी हो सकता है। आन्ध्रवासी मूलतः तेलुगु भाषी है। अपनी मातृभाषा तेलुगु का प्रभाव यहां के लेखकों के हिंदी साहित्य पर देखा जा सकता है। यही उनका वैशिष्ट्य है। प्रस्तुत परियोजना में आन्ध्रों के हिंदी लेखन को प्रभावित करनेवाले ऐसे तत्वों की जानकारी के लिए आरंभ से ध्यान रखा गया है। सर्वप्रथम एक ऐसी प्रश्नावली तैयार की गयी है। जिसके माध्यम से ऐसे तत्वों की जानकारी मिल सकती है। अतः परियोजना में प्राप्त साहित्य लेखकाधारित है। व्यापक धाराओं एवं प्रवृत्तियों का रेखांकन भी इसी आधार पर किया गया है। आन्ध्रों का हिंदी साहित्य लेखकों के वातायन से तथा उनके व्यक्तित्व गरिमा व कमजोरियों से अभिव्यक्त हुआ है। ये लेखक यहीं पैदा होकर यहीं की संस्कृति से पोषित है। अतः यह प्राक्कल्पना बनायी गयी है कि ऐसी रंगत में रंग गया साहित्य ही आन्ध्रों का हिंदी साहित्य है। यहाँ पैदा होकर भी स्थानीय रंगत से दूर रहनेवाले तथा यहाँ बस कर स्थानीय रंगत से अनभिज्ञ लेखन को आन्ध्रों के हिंदी लेखन के अंतर्गत मानना उचित नहीं है।

7.4.आन्ध्र में हिंदी लेखन का ऐतिहासिक क्रम

आन्ध्र में हिंदी लेखन कब शुरु हुआ, इस पर स्पष्ट निर्धारण करने के पहले इस पर विचार करना उचित होगा कि आन्ध्र के हिंदी लेखकों ने आरंभ में किस विधागत रूप का प्रयोग किया है। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार कविता और नाटक विधाएँ ऐसी हैं जिन में बहुत पहले से आन्ध्र के लेखकों ने अपने सृजन को प्रस्तुत किया है। उपन्यास, कहानी आदि में लेखन बहुत बाद में शुरु हुआ है। कविता और नाटक में भी नाटक विधा में ही आन्ध्रों का पहला लेखन हुआ है। इसके दो प्रमाण प्राप्त होते हैं। एक तो प्रबंध काव्य है जो 'लाजपति पिंगल' नामक कवि ने सन् 1835 में श्री 'रामदास' शीर्षक से प्रबंध काव्य लिखा है। दूसरी ओर 'पुरुषोत्तम' कवि नाम से एक आन्ध्र के लेखक ने सन् 1916 'रामदासु चरित्रमु' के शीर्षक से हिंदुस्तानी नाटक लिखा है। संयोग से दोनों की कथावस्तु श्री राम चंद्र के

अनन्य भक्त रामदास की जीवनी पर आधारित है। समय की दृष्टि से पुरुषोत्तम कवि के द्वारा रचित नाटक आन्ध्र के हिंदी लेखक की प्रथम रचना मानी जा सकती है। एक तो यह हिंदुस्तानी भाषा में रची गयी है। साथ ही इस पर तेलुगु की छाप है। फिर इस नाटक के ऐतिहासिक महत्व को ठुकराया नहीं जा सकता है।

वस्तुतः शिल्प और भाषा की दृष्टि से लाजपति पिंगल का प्रबंध काव्य 'श्री रामदास' श्रेष्ठ काव्य ठहरता है। पुरुषोत्तम कवि पर विशेष अध्ययन करनेवाले स्वर्गीय 'प्रो. भीमसेन निर्मल' ने उनके नाटक के बारे में यह लिखा है 'रचनाक्रम के अनुसार इस नाटक (रामदास चरित्र) का क्रम चौबीसवाँ है। यह नाटक स्वयं लेखक द्वारा सन 1916 में मछलीपट्टणम के 'आर्यानंद मुद्राक्षरशाला' में छपकर प्रकाशित हुआ। इस नाटक के लिए लेखक ने विस्तृत भूमिका लिखी है। यह भूमिका भाग तेलुगु भाषा में है। इस भूमिका में श्री पुरुषोत्तम जी ने हिंदी, हिंदुस्तानी की चर्चा, अपने हैदराबाद के निवास और वहाँ की भाषा का अध्ययन, धारवाड नाटक कंपनी के प्रदर्शन, तत्प्रेरणा से स्वरचित हिंदुस्तानी नाटकों की नामावली, धारवाड़ कम्पनी के सदस्यों के समक्ष स्वयं सूत्रधार बनकर नाटक प्रदर्शित कर उनकी प्रशंसा एवं प्रोत्साहन प्राप्त करना, हिंदी छंदों की रचना में तिगुने नियमों का पालन आदि की विशद चर्चा की है।' इस से स्पष्ट होता है कि पुरुषोत्तम कवि की इस रचना को (नाटक को) आन्ध्रों की प्रथम हिंदी कृति के रूप में मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अतः आन्ध्रों के हिंदी लेखन का आरंभ सन् 1916 से मानना ही उचित होगा। तब से लेकर अब तक आन्ध्र के हिंदी लेखकों ने अपनी कला एवं प्रतिभा से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है।

• युग-विभाजन, विकास

आन्ध्रों के हिंदी साहित्य का आरंभ इस रूप में लगभग सन् 1920 के आसपास हुआ है। तब से आन्ध्र के लेखकों ने उत्तरोत्तर अपने प्रयासों को विस्तार दिया है। आन्ध्र के हिंदी लेखकों के इस प्रयास का अध्ययन - विश्लेषण करने के लिए उन्हें कुछ युगों में बाँटकर विचार करना सरलतम होगा। इसी उद्देश्य से आन्ध्रों के हिंदी सृजन को, जो सामान्यतया हिंदी साहित्य के अंतर्गत ही मान लेना चाहिए, पीढ़ियों को दृष्टि में रखकर युग - विभाजन किया जा सकता है। इस में फिर आज़ादी को एक सीमा रेखा के रूप में लेते आन्ध्रों हुए के हिंदी साहित्य को मोटे रूप में दो युगों में बाँटा जा सकता है। स्वतंत्रतापूर्व हिंदी साहित्य, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य। फिर इन का पुनर्विभाजन किया जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर युग को कई उत्थानों में बांट कर देखा जा सकता है, जो निम्नांकित है-

1. स्वतंत्रतापूर्व युग।

2. स्वातंत्र्योत्तर युग।

1. प्रथम उत्थान (सन् 1916 से 1947 तक)।

2. द्वितीय उत्थान (सन् 1947 से 1960 तक)।

3. तृतीय उत्थान (सन् 1960 से 1980 तक)।

4. चतुर्थ उत्थान (सन् 1980 से 2000 तक)।

5. पंचम उत्थान (सन् 2000 से अब तक)।

विकास

स्वतंत्रतापूर्व युग के प्रथम उत्थान के साथ आन्ध्रों का हिंदी लेखन तो शुरु हुआ। फिर भी उसमें विशेष योगदान दिखाई नहीं पड़ता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में ही विधिवत आन्ध्रों के हिंदी लेखन में तेज़ी आती है। यह गति एकाध विधाओं में नहीं है, बल्कि साहित्य की सारी विधाओं में इस गति को रेखांकित कर सकते हैं। कविता, नाटक के साथ-साथ उपन्यास, कहानी तथा निबंध आदि के क्षेत्र में भी आन्ध्रों ने विशेष योगदान दिया है। आन्ध्र में विश्वविद्यालयों की स्थापना के साथ हिंदी का प्रचार भी अधिक हुआ। साथ ही स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत सरकार के प्रयासों से पूरे भारत में हिंदी का प्रचार और प्रसार हुआ है। इस कारण से भी आन्ध्र में हिंदी लेखन उत्तरोत्तर विकसित हुआ है। अतः द्वितीय उत्थान से लेकर आन्ध्रों के हिंदी लेखन में विशेष वृद्धि को रेखांकित किया जा सकता है।

7.5. आन्ध्रों के हिंदी लेखन का वर्गीकरण

आन्ध्रों के हिंदी लेखन का विस्तृत परिचय देने के पहले उसका वर्गीकरण और उसके आधारों पर विचार करना चाहिए। आन्ध्रों का हिंदी लेखन विविध विधाओं एवं रूपों में फैला हुआ है। हिंदी साहित्य के आज जितने सारे रूप विकसित हुए हैं, उनमें किसी न किसी रूप में आन्ध्र के लेखकों ने योगदान दिया है। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण आदि लोकप्रिय विधाओं के अतिरिक्त अनुवाद के क्षेत्र में आन्ध्रों का विशेष योगदान रहा है। तेलुगु से हिंदी तथा हिंदी से तेलुगु में अनुवाद करने का श्रेय सिर्फ आन्ध्र के हिंदी लेखकों को ही दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त व्यंग्य, व्याकरण, शब्द कोश, साहित्य का इतिहास भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान, लोक साहित्य, वैज्ञानिक साहित्य आदि क्षेत्रों में भी आन्ध्र के लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस पूरे को देखते हुए साहित्यिक विधा को आधार बनाकर आन्ध्र के लेखकों और उनकी रचनाओं का विस्तृत परिचय प्रस्तुत करना उचित लगता है। इस परिचयात्मक सर्वेक्षण में साहित्येतिहास पद्धति का उपयोग करना भी उचित है।

साहित्येतिहास पद्धति में समीक्षात्मक दृष्टि अपनाते हुए भी किसी भी साहित्यिक कृति अथवा साहित्यकार का उसके परिवेश के संदर्भ में मूल्यांकन किया जाता है। इसलिए उक्त कृति या कृतिकार के ऐतिहासिक महत्व के साथ काल संदर्भ में सही मूल्यांकन हो जाता है। काल संदर्भ की उपेक्षा करने से मूल्यांकन एकांगी होने की पूरी संभावना होती है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में साहित्यकार और उसकी कृति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में परखते हुए उसकी समीक्षा की जा रही है। साथ ही यह प्रणाली साहित्यिक विधा के आधार पर करने से मूल्यांकन करने में तथा उसकी प्रस्तुति में भी सुविधा होगी। आगे साहित्यिक विधा को आधार बनाकर आन्ध्रों के हिंदी लेखन का मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा।

7.6. आन्ध्रों का हिंदी साहित्य : विस्तृत परिचय

आन्ध्रों का हिंदी लेखन नाटक से शुरु हुआ। फिर भी उसमें कविता की कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त गद्य की प्रमुख विधाओं में भी आन्ध्र के लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसमें उपन्यास, कहानी, निबंध के अतिरिक्त, रेखाचित्र, संस्मरण, आलोचना भी शामिल हैं। साहित्यिक विधाओं में कविता ही आदि विधा है। इसलिए उसी क्रम में कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना आदि क्रम में यह परिचय प्रस्तुत किया जाएगा। इसके अतिरिक्त आन्ध्र एक विशाल राज्य है। इसमें मुख्यतया भाषा-बोली के हिसाब से तीन प्रमुख प्रदेश हैं। कोस्ता - आन्ध्र, तेलंगाना तथा रायलसीमा। इन तीनों प्रदेशों के लेखकों ने हिंदी में लेखन कार्य किया है। इन तीनों के समेकित रूप को ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

7.7. आन्ध्रों की हिंदी कविता

कविता आदि साहित्यिक विधा है। आन्ध्र के हिंदी कवियों ने भी इसका सर्वप्रथम इस्तेमाल किया है। खासकर आन्ध्र के तीनों प्रदेशों में तटवर्ती आन्ध्र के कवि या कोस्ता आन्ध्र के कवियों ने इस विधा का अधिक उपयोग किया है। अनेक श्रेष्ठ कवि इस प्रदेश में पैदा हुए। हिंदी भाषा के माध्यम से अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। आन्ध्र में यह कार्य स्वतंत्रता पूर्व काल से होता आया है। सर्वप्रथम सन् 1935 में लाजपति पिंगल जी ने अपनी काव्य रचना 'श्री रामदास' के माध्यम से इसका श्रीगणेश किया है। इस रूप में इन को आदि कवि मान सकते हैं। ये आन्ध्र के तटवर्ती प्रदेश के कृष्णा ज़िले के विजयवाड़ा में पैदा हुए हैं। उनकी 'श्री रामदास' एक भक्ति रस प्रबंध काव्य है। इसमें इन्होंने आन्ध्र के महान राम भक्त तथा पदकर्ता 'भद्राचल गोपन्न' की जीवनी प्रस्तुत की है। इसकी कथावस्तु का विवेचन करते हुए 'डॉ. यार्लागड्डा लक्ष्मी प्रसाद' जी ने लिखा है, 'इस काव्य की कथावस्तु से ही हम इस बात से अवगत हो जाते हैं कि यह काव्य एक उच्चकोटि का भक्ति काव्य है। इसमें आद्योपांत एक भक्त के जीवन के उतार-चढ़ाव तथा उस संदर्भ में भी अटल भक्ति, अपरिमित श्रद्धा से उसके जीवन में वैसे-कैसे आश्चर्य घटित होते हैं, का चित्रण कर रामभक्ति की, राम नाम की महिमा का गुणगान किया है। राम दास की अटल भक्ति का प्रदर्शन किया है जैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, भगवान राम की याद करके उनकी पूजा करते हैं। अपनी अनगिनत कठिनाइयों के बावजूद भी उनके मन में राम के प्रति वही श्रद्धा बनी रहती है जो दंड भोगी बनने के पहले रहती है। अनन्य भक्ति की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है। भक्त को न स्वर्ग की कामना होती है न दुनियादारी किसी विषय की। उसे केवल भगवान के प्रति भक्ति और प्रेम पर्याप्त है।'

इन बातों से स्पष्ट होता है कि यह काव्य पूर्णतया भक्ति काव्य है। कवि ने रामदास के चरित को आधार बनाकर राम के प्रति अनन्य भक्ति का निरूपण किया है। कवि की दृष्टि में राम और भक्त में अंतर नहीं है। यह संबंध भक्त और भगवान का है। कवि की काव्य प्रतिभा के नमूनार्थ एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें कवि ने भगवान और भक्त के अनन्य संबंधों पर प्रकाश डाला है। उनकी दृष्टि में भक्त भगवान का ही अंश है। दोनों में कोई पार्थक्य नहीं होता है। कवि लाजपति पिंगल जी की निम्न पंक्तियाँ इसी विचार को परावर्तित करती हैं-

सर्वत्र इन की देह में हैं राम की ही मूर्तियाँ
जो भक्ति कवचाबद्ध ही है, ये वृथा सब रीतियाँ।
ज्यों मधुर-मत्त-पदार्थ पीकर मनुज रहता मत्त - सा
त्यों भक्ति-मत्त - पदार्थ पीकर दास था उन्मत्त - सा॥

(श्री रामदास, पृ: 37)

तटवर्ती आन्ध्र के ही एक और कवि श्री कर्णवीर नागेश्वर राव का जन्म सन् 1900 में चीराला शहर से दो मील की दूरी पर स्थित आंडूपेट गाँव में हुआ था। वे सनातन व धार्मिक स्वभाव के परिवार के रहें। अल्पायु विवाह होने के बाद वे विरागी बनकर काशी गए। वहीं कुछ साल रहे। चीराला - पेराला आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। सन् 1942 में जब गांधीजी चीराला आए थे, उस समय उन्होंने गांधी जी के भाषणों का तेलुगु में अनुवाद किया था। उन्होंने हिंदी अध्यापक का काम करते हुए अपने प्रदेश में हिंदी का प्रचार व प्रसार किया। उन्होंने अपनी रचनाओं को तेलुगु,

हिंदी तथा संस्कृत भाषाओं में लिखा है। कुल मिलाकर इनकी 32 रचनाएँ मानी जाती हैं। इनमें 6 हिंदी की रचनाएँ हैं। आदर्श विवाह, कथा-मंजरी, दलितों की विनति, सरल हिंदी बोध, साहित्य सौरभ, हिंदी तेलुगु बोधिनी। 'दलितों की विनति' इनकी सर्वाधिक चर्चित रचना है। इस में 272 छंद हैं। यह एक मुक्तक रचना है। तेलुगु के शतक काव्य तथा हिंदी की सतसई परंपरा से अलग इन्होंने इस रूप में एक नया प्रयोग किया है। कवि सनातन धर्म पर विश्वास करते हैं। फिर भी धर्म की आड़ में जातिगत शोषण का वे विरोध करते हैं।

विनति करें कहाँ तक गुणियों ! प्रकट कीजिए प्रेम।
पवित्र हिंदू मत की वृष्टि, सूचित करती नेम।
इस के शीतल-धर्म-बिंदु से, होती मन में शांति।
निम्न भावना स्वयं जगत की हठ जाने की क्रांति ॥

प्रस्तुत काव्य की भूमिका लेखक वियोग हरि के शब्दों में कवि अस्पृश्यता को हिंदू-धर्म पर कलंक रूप मानते हैं। हरिजन सेवा के अच्छे समर्थक हैं। गांधी जी के परम भक्त हैं। तथा और क्या चाहिए ? 'दलितों की विनति' में उन्होंने अपने हृदय के उद्गार पांडित्य और भावुकता के साथ व्यक्त किये हैं।

हिंदी में अधिक लोकप्रिय कवि श्री **'आलूरी बैरागी'** का जन्म तटवर्ती आन्ध्र के गुंटूर जिले के ऐतानगर में 1925 में एक कृषक परिवार में हुआ। बैरागी जी की प्रारंभिक शिक्षा अपने ही गाँव ऐतानगर में हुई। उसके बाद ग्यारह वर्ष की कम उम्र में बिहार जाकर वहाँ पांच वर्षों तक हिंदी की शिक्षा ली। उधर से लौटने के बाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की परीक्षाएँ पास की हैं। साथ ही तेरह वर्ष में ही हिंदी में कविता लिखना शुरु किया था। बैरागी जी को तेलुगु के अतिरिक्त हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। इन्होंने तेलुगु में भी बराबर कविताएँ लिखी हैं। तेलुगु में इनकी 'नूतिलो गोंतुकलु', 'चीकटि नीडलु' सर्वोत्तम कविता-संग्रह माने जाते हैं। इन्होंने फिल्मों में भी काम किया है। बैरागी जी का व्यक्तित्व हिंदी के निराला जैसा व्यक्तित्व है। जीवन की निराशा, हताशा, रूदन, कसक, वेदना और संघर्ष उनके जीवन के पग-पग में देखे जा सकते हैं। वे जन्मजात दार्शनिक एवं चिंतनशील कवि हैं। उनकी कल्पना, भावुकता एवं विचारधारा में चिर नवीनता झलक पड़ती है। प्रसिद्ध हिंदी के कथाकार डॉ. बालशौरि रेड्डी इन में अज्ञेय और मुक्तिबोध को पाते हैं। श्री बैरागी जी की कविताओं का प्रमुख संग्रह 'पलायन' है। इसका प्रकाशन 'बादल की रात' के रूप में भी हुआ है। उनकी आरंभिक कविताओं में गीतितत्व की प्रधानता है, जो छायावादी कविताओं की याद दिलाती है। निम्न कविता में मस्ती और मादकता समरूपों में झलकती है-

नयन रूप रस के मदमाते,
लोल दृशा - रसना पसार कर झूम-झूम झूकते, चकराते।
रूप अनल शलभ सदृश आंखें
घिर-घिर कर झुलसाती पांखें
फिर भी तृप्ति नहीं, जब तक
इन के प्राण पवन बिखर न जाएँ
अमर तृषा का यह ज्वलितासव,

एक प्रसूर चषक में आर्णव,

भग्न - पात्र के गंध - मात्र से,

ज्ञानी भी सुधबुध खो जाते।

बैरागी यथार्थवादी कवि है। अपनी अनुभूतियों को बिना किसी आवरण के व्यक्त करने की ईमानदारी उनमें देख सकते हैं। उनका जीवन हमेशा संघर्षपूर्ण रहा। निराशा और उदासी कई बार उनके जीवन में आयी। जीवन की निस्सारता, अनित्यता, क्षणभंगुरता आदि से कवि का मन विचलित हो गया। निराशा एवं उदासी में भी आत्मविश्वास प्रकट करते हैं। ऐसा जीवन संदेश देना ही कविकर्म है। जीवन टूटन से बचाना भी मानवीयता है। ऐसे मानवीय संदेश बैरागी जी की कविताओं में यत्रतत्र देख सकते हैं। महाकाल से भी लड़ने का धैर्य उनकी कविता देती है।

बैरागी जी की अधिकांश कविताओं में प्रगतिशील विचार हैं। दलित, दमित एवं उपेक्षित लोगों के प्रति असीम अनुकंपा है। उन्हें सामान्य मानव की चिंता है। जो वर्तमान भ्रष्टाचारी एवं विषमताओं से पूर्ण व्यवस्था का शिकार हो रहा है। उनकी व्यथा - गाथा, भूख-प्यास, गरीबी एवं अकाल का चित्रण उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। हमारे समाज में बच्चों को पीने के लिए दूध नहीं मिलता, बच्चों को जन्म देनेवाली माताओं को ठीक से भोजन नहीं मिलता, रहने के लिए मकान नहीं, मजदूर, किसान, गुमश्ता आदि के घरों में सर्वत्र अकाल की परछाइयाँ दिखाई देती हैं। माताओं की छातियाँ सूखी हैं। इसलिए उनके घरों में एकादशी व्रत और अनशन व्रत होता रहता है। संघर्षों से जूझनेवाला मानव जीवन से पलायन करने की कोशिश करता है। कवि की दृष्टि में पलायन करना कायरता है।

तटवर्ती आन्ध्र के एक और कवि 'काजा वेंकटेश्वर राव' कृष्ण जिले के गांधी के रूप में माने जाते हैं। ये भी स्वतंत्रतापूर्व पीढ़ी के हैं। इनका जन्म कृष्णा जिले के एक किसान परिवार में सन् 1923 में हुआ है। आन्ध्र के हिंदी प्रचार कार्यक्रमों में इन्होंने बड़ी निष्ठा के साथ भाग लिया है। इन्होंने गांधीजी के साथ दांडी सत्याग्रह में भी भाग लिया। ये हिंदी और तेलुगु के अच्छे कवि हैं। इन्होंने अभिलाषी उपनाम से लेखन कार्य किया है। 'अंतस्तल' इन का एकमात्र कविता-संग्रह है। इसमें 41 कविताएँ संग्रहीत हैं। अधिकांश कविताएं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं। राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित इस संकलन की कविताओं में नेताओं की त्याग - शीलता एवं कर्म निष्ठता की प्रशंसा की गयी है। राष्ट्रीय नेताओं की मृत्यु पर इन्होंने कविताएँ लिखी हैं। एक राष्ट्रीय नेता की मृत्यु पर लिखी गयी उनकी एक कविता द्रष्टव्य है-

त्रिवेणी से सीखा उसने,

धैर्य, सौम्य, करुणा से चलना।

हिमालय से सीखा उसने

देश का सिर उठाये रखना।

देश भक्ति का पुंज बन कर,

शांति क्रांति की राह पकड़ी।

करोड़ों जन-मन की चेतना बन,

स्तुत्य जीवन की ज्योति बनी।

नहीं माँ, आज मैं न रोऊँगी।

सही कारण इनका मैं ढूँढूँगी।

श्री वारणासी 'राममूर्ति रेणुजी' एक कुशल कवि हैं। इनका जन्म आन्ध्र के ओंगोल जिले के वल्लूर नामक गांव में सन् 1917 में हुआ था। आरंभिक शिक्षा अपने गांव में पाने के बाद काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा मद्रास विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर इनको प्राप्त हुआ है। उनकी प्रकाशित कृतियों में आन्ध्र देश के कबीर श्री वेमना, विहग गीत, आन्ध्र भागवत परिमल, चमगीदड अत्यंत प्रमुख हैं। उनकी कविताओं में देशभक्ति तथा प्रकृति-चित्रण प्रमुख विषय बन कर आये हैं। देशभक्ति संबंधी उनकी एक कविता द्रष्टव्य है। 'गीत विहग' कविता में उन्होंने लिखा है-

हिमगिरी पावन था पितृ देश

केरल कानन था मातृ देश

आसेतु शीत नग का अशेष

शुभ स्वर्ण देश, मेरा स्वदेश !

****

मैं विहग बाल उन्मुक्त देश,

हाँ! फँसा आज परतंत्र-क्लेश !

श्री बोदराजु वेंकट सुब्बाराव 'हरिकिशोर' का जन्म गुंटूर जिले के स्वर्ण गांव में सन् 1914 को हुआ था। ये उच्चशिक्षा प्राप्त कवि विद्वान हैं। इनकी कुल पाँच काव्य रचनाएँ हिंदी में प्राप्त होती हैं। 1. मृणालिनी 2. भारत श्री 3. रेशमी कुरता 4. हंपी के खंडहर 5. मेरी काव्य – साधना। उनकी 'मृणालिनी' सात सर्गोंवाला खंड काव्य है। इसकी काव्यवस्तु वेदकालीन है। यह एक प्रेम-काव्य है। इसमें ऊष्मबाहु नामक एक प्रेमी तथा मृणालिनी नामक प्रेमिका का चित्रण किया गया है। जातिगत अंतर के कारण उनका विवाह नहीं हो पाता है। इसलिए दोनों प्रेमी नियमोल्लंघन करके विवाह करने की कोशिश करते हैं। वेद पुरुष इनको मृत्यु दंड देता है। फिर अग्निदेव के समझाने के बाद पंचम जाति के बनने की शर्त पर छोड़ दिया जाता है। अपने प्रेम को सफल बनाने के लिए दोनों पंचम वर्णी बनने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस रूप में यह जातिवाद से संबंधित प्रेम काव्य है। 'रेश्मी कुर्ता' रावजी की एक लंबी व्यंग्यात्मक कविता है। इसमें कवि ने रेशमी कुरता पहनने के बाद मनुष्य के व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तन तथा उसके प्रभावों की श्रृंखला को पाठकों के सामने व्यक्त किया है। इसमें श्रृंगार का भी सुंदर चित्रण है।

रावजी की 'भारत श्री' में उत्तर भारत की यात्राओं का वर्णन है। इसमें कवि ने सामाजिक यथार्थ को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'हंपी के खंडहर' राव जी का श्रेष्ठ ऐतिहासिक प्रबंध काव्य है। इसमें कुल पाँच सर्ग हैं। फिर प्रत्येक सर्ग कुल 3 भागों में विभक्त है। इसमें विजयनगर साम्राज्य का पतन तथा उसके खंडहरों में परिवर्तित होने की घटनाओं का सुंदर वर्णन है। इसमें मुख्यतः तमोलिन मंजुवानी और आयिन उले मुल्क के बीच प्रेम, उले मुल्क का

राजद्रोह, राजा आलिय राम राज की हत्या मंजुवानी के हाथों से उले मुल्क की हत्या और उले मुल्क की सेना द्वारा विजयनगर के खंडहर बनाना आदि प्रसंग चर्चित हुए हैं। 'मेरी काव्य साधना' में अनेक फुटकल कविताएँ संग्रहित हैं।

श्री चावली सूर्यनारायण मूर्ति एक कुशल तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं उनका जन्म आन्ध्र के गोदावरी जिले में 1920 को हुआ था यह उच्च शिक्षा प्राप्त कवि विद्वान हैं इनका कार्य क्षेत्र मद्रास रहा है। इन्होंने कविता के साथ नाटक और आलोचना भी लिखी है। 'सत्यमेव जयते' तथा 'महानाश की ओर' इनके दो लोकप्रिय पौराणिक नाटक हैं। इनके अतिरिक्त रामायण की उपेक्षित पात्र ऊर्मिला की जीवनी पर आधारित 'सती ऊर्मिला' खंडकाव्य भी इन्होंने लिखा है। सीता उर्मिला की कथावस्तु चार तरंगों में वर्णित है। आरंभ में राम रावण संहार के बाद अयोध्या लौटते हैं। अयोध्या में उनका राजतिलक किया जाता है। बहुत भव्य आयोजन किया जाता है राम के सिंहासन पर बैठने के बाद सीता राम से लक्ष्मण को अपनी पत्नी उर्मिला के पास भेजने की बात कहती है। राम सीता की बात मानकर ऐसा ही करते हैं राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण उर्मिला से मिलने उसके महल पर जाता है। उस समय उर्मिला की स्थिति बहुत दयनीय थी। वह पलंग पर सूखी लता से सो गई थी लक्ष्मण उसे प्यार से कोमल स्वर में उठाने की कोशिश करते हैं। परंतु निद्रा में डूबी उर्मिला अपने सपने में किसी दृश्य को देखती है और घबरा उठती है कि कोई पराया पुरुष उस पर अत्याचार करने आया है। इसलिए वह लक्ष्मण को खरी-खोटी सुनाती है। परंतु तब उसे पता चलता है कि वह कोई पराई पराया पुरुष नहीं हैं बल्कि उसका पति लक्ष्मण है। वह गद् गद् हो उठती है लक्ष्मण के चरणों पर गिरती है। विरहाकुल लक्ष्मण उसे आलिंगन बद्ध करता है। फिर उर्मिला थोड़ा मान का नाटक करती है कि वह क्यों उसे छोड़कर भाई के साथ वनवास पर गया है। लक्ष्मण भी इस संदर्भ में पश्चाताप करता है। क्षमा की प्रार्थना करता है फिर परिवार में सभी का मिलन होता है। एकांत के समय लक्ष्मण से उर्मिला पूरी रामकथा सुनती है। वह सूर्पणखा पर दया दिखाती है। फिर लक्ष्मण उसके बारे में भी बताता है। कवि ने बड़ी कला के साथ रामायण की कथा को नये प्रसंग के साथ जोड़ने का प्रयास किया है।

श्री रापर्ति सूर्यनारायण एक और कुशल तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं। इनका असली नाम सूर्य कौनय्या था। इन का जन्म विजयनगरम में सन् 1915 में हुआ था। अल्पायु में पिता की मृत्यु के कारण इनकी शिक्षा अधूरी रह गयी। 'योजनगंधा' इनकी लोकप्रिय खंडकाव्य रचना है। इसके अतिरिक्त 'तारकेश्वर महिमा' इनका अधूरा खंड काव्य है। 'योजनगंधा' खंड काव्य महाभारत की कथा पर आधारित है। इसमें योजन गंधा के जन्म से लेकर शंतनु के साथ उसके विवाह तक की कथा अनेक घटनाओं के माध्यम से वर्णित है। काव्य शैली तथा भाषा का एक नमूना द्रष्टव्य है।

आन्ध्र के द्वितीयोत्थान कवियों ने हिंदी कविता को विशेष योगदान दिया है। प्रथमोत्थान कविता की तुलना में इस युग में कविता अधिक समृद्ध हुई है। इस उत्थान के दौरान कवियों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ तटवर्ती आन्ध्र के अतिरिक्त काव्य-सृजन दूसरे प्रदेशों में भी फैलता नज़र आता है। इस उत्थान के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है। इस उत्थान के कवि स्वातंत्र्योत्तर काल में काव्य सृजन में लगे हैं। इसलिए पहले के उत्थान की तुलना में वस्तु तथा शिल्प के क्षेत्र में कई परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं।

प्रो. सरगु कृष्णमूर्ति एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं। उनका जन्म सन् 1931 में कर्नाटक के बल्लारी नगर में हुआ है। पहले यह प्रांत आन्ध्र में था। तेलुगु भाषी हिंदी कवियों में वे अधिक चर्चित हैं। उनकी काव्य कृतियों में मधु स्वप्न, ज्वाला केतन, श्रीकृष्ण गांधी चरित, कुंतल रासो प्रमुख हैं। उनके प्रथम काव्य संग्रह 'मधुस्वप्न' में कुल 35 कविताएँ संग्रहीत हैं। इन कविताओं में प्रेम, विरहजन्य सघन पीडानुभूति आदि विषयों की मार्मिक व्यंजना हुई है। 'ज्वाला केतन' में कृष्णमूर्ति जी की पच्चीस कविताएँ संग्रहीत हैं।

इसमें कवि की प्रगतिशील भावनाएँ व्यंजित हुई हैं। इसमें मुख्यतया परिवर्तनशील तत्व एवं महत्व, विद्रोह और वेदना, स्वप्न एवं सत्य, यौवन और ज्वाला आदि के अत्यंत मार्मिक चित्र अंकित हैं। इस संग्रह की ज्वाला केतन, सो न भी सकूँगा फूलों में, निराला के निधन पर और धर्म भिक्षा आदि कविताएँ अधिक लोकप्रिय हुई हैं। कृष्णमूर्ति जी के द्वारा रचित 'श्रीकृष्ण गांधी चरित' एक पौराणिक द्वयार्थी काव्य है। इसमें महापुरुष गांधी के चरित के साथ-साथ श्रीकृष्ण का चरित भी वर्णित है। डॉ. सरगुजी का 'कुंतल रासो' एक वीर रस प्रधान प्रबंध काव्य है। यह मध्ययुगीन रासो काव्यों की याद दिलाता है। इस में कुल सात सर्ग हैं। वस्तु के रूप में दिल्ली के नरेश तुगलक तथा कर्नाटक के जंबुकेश्वर के भीषण संग्राम को लिया गया है।

डॉ. पी. आदेश्वर राव उच्चशिक्षा प्राप्त विद्वान एवं तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं। उनका जन्म 1936 में आन्ध्र के गुंटूर शहर में हुआ है। आन्ध्र विश्वविद्यालय के अतिरिक्त कई विश्वविद्यालयों में उन्होंने आचार्य का काम किया है। वे कवि, आलोचक, भाषा - वैज्ञानिक तथा अनुवादक भी हैं। वे मूलतः एक भावुक एवं कल्पनाशील कवि हैं। उन्होंने बहुत बचपन से ही कविता लिखना शुरु किया था। सन् 1969 में उनका पहला काव्य-संग्रह 'अंतराल' प्रकाशित हुआ था। आचार्य आदेश्वर रावजी मुख्यतया प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। प्रकृति-चित्रण भी उन की कविताओं में हिलोरे मारता दिखाई पड़ता है। प्रकृति के विविध रूप उन की कविताओं में दर्शन देते हैं।

डॉ. राव जी भावुक कवि ही नहीं, बल्कि एक चिंतनशील कवि भी हैं। 'अखिल विश्व यह पागलखाना' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। इस कवि का यह विचार प्रकट हुआ है कि सारा विश्व ही एक पागलखाना है। विश्व के सभी किसी न किसी रूप में पागल है।

डॉ. सूर्यनारायण 'भानु' एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं। उनका जन्म सन् 1924 में गुंटूर जिले के तेनाली नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने मुख्यतया अध्यापन कार्य किया है। 'रूप राग' इनका काव्य-संग्रह है। यह गीतों का संग्रह है। इस संग्रह के गीतों में भाव प्रवणता, रसात्मक अभिव्यक्ति, बिंब, अलंकार और ललित वर्णन पाये जाते हैं। इनकी कविताओं की समीक्षा करते हुए आचार्य सीतालक्ष्मी ने इनकी तुलना छायावादी कवियों से की है।

श्री जी. सीतारामय्या उच्चशिक्षा प्राप्त एक और तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं। इनकी काव्य रचना 'मूल्यांकन' एक प्रबंध काव्य है। पांच सर्गों में लिखे गए इस काव्य की वस्तु पौराणिक है। यह संस्कृत हरिवंश पुराण की वस्तु पर आधारित काव्य है। इस में कृष्ण की पत्नी एवं प्रेयसी सत्यभामा की स्त्री - सुलभ मनोवृत्तियों का अंकन किया गया है। इसमें वर्णित सत्यभामा ममता, अहंकार, दंभ आदि राजसी प्रवृत्तियों की प्रतिमूर्ति है। उसी रूप में रुक्मिणी श्रद्धा, भक्ति, अनुराग आदि सात्विक प्रवृत्तियों की प्रतीक है। कवि ने काव्य में इन दोनों प्रवृत्तियों का संघर्ष दिखाया है। अंत में कवि ने श्रद्धा संबलित सात्विक भक्ति की विजय करायी है। काव्य शैली और भाषा का एक नमूना द्रष्टव्य है। पारिजात पुष्प रुक्मिणी को मिलने के बाद सत्यभामा कुपित होती है। मान करने लगती है। श्रीकृष्ण उसे मनाने की कोशिश करता है। झुंझुलाहट में सत्यभामा का वामपाद श्रीकृष्ण के ललाट पर लगता है।

प्रो. कर्ण राजशेषगिरि राव एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी कवि हैं। कर्णवीर नागेश्वर राव इन के पिताजी हैं। उनका जन्म आन्ध्र के चीराला के निकट जांडूपेट में सन् 1927 में हुआ था। वे आन्ध्र विश्वविद्यालय के आचार्य रहे हैं। इनकी फुटकल कविताएँ प्राप्त होती हैं। उनमें हे राही, आकांक्षा, षटकण, त्रिशूल, त्रिवेणी, रहस्य, आलोक आदि उल्लेखनीय हैं।

इनके अलावा डॉ. पल्लव राव एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिन्दी कवि हैं। डॉ. अन्नपुरेड्डी श्रीराम रेड्डी एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिन्दी कवि हैं। इन कवियों के अतिरिक्त तटवर्ती आन्ध्र के अन्य कवियों में डॉ. पी. ए. राजु, श्री रामुलु, हेमलता आंजनेयुलु, कलाप्रपूर्णा केशिराजु वेंकट नरसिंह अप्पाराव, वेलगा रामकोटय्या चौधरी आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी फुटकल कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

7.8. सारांश

अंतः सारांश के रूप में यह कह सकते हैं कि आन्ध्र में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने में तेलुगु साहित्यकारों का बढ़ा योगदान रहा। तेलुगु भाषी होते हुए भी हिन्दी लिखना और सीखना सिर्फ इनका शोख नहीं था बल्कि यह इनका जीविका बना लिया। आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी के प्रचार-प्रचार को बढ़ावा देने, राज्य के तुलुगु भाषी हिन्दी रचनाकारों के लेखन का कार्य को प्रोत्साहित करना तथा तेलुगु भाषा, साहित्य और संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाना हिन्दी अकादमी का बढ़ा योगदान रहा।

7.9. बोध प्रश्न

1. आन्ध्र में हिन्दी लेखन- विकास और गति, आन्ध्र में हिन्दी लेखन- स्वरूप और समृद्धि के बारे में लिखिए।

2. आन्ध्र में हिन्दी लेखन- लेखकाधारित स्वरूप और आन्ध्र में हिन्दी लेखन का ऐतिहासिक क्रम आरंभ, युग-विभाजन, विकास के बारे में लिखिए।

3. आन्ध्र के हिन्दी लेखन का वर्गीकरण और आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य-विस्तृत परिचय के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

7.10. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस.ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

डॉ. एम. मंजुला

8. आन्ध्र में मौलिक हिंदी लेखन- गद्य साहित्य

8.0. उद्देश्य

रूप रेखा

8.1. प्रस्तावना

8.2. आन्ध्रों का हिन्दी उपन्यास साहित्य

8.3. आन्ध्रों का हिन्दी कहानी साहित्य

8.4. आन्ध्रों का हिन्दी नाटक साहित्य

8.5. आन्ध्रों का हिन्दी निबंध साहित्य

8.6. आन्ध्रों का हिन्दी आलोचना साहित्य

8.7. आन्ध्रों का अनूदित साहित्य

8.8. आन्ध्रों का हिन्दी व्यंग्य साहित्य

8.9. सारांश

8.10. बोध प्रश्न

8.11. सहायक ग्रंथ

8.2. आन्ध्रों का हिंदी उपन्यास साहित्य

उपन्यास आधुनिक काल में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा के रूप में विकसित हुआ है। औद्योगीकरण और मध्य वर्ग के विकास के साथ ही हिंदी में उपन्यास का अधिक विकास हुआ है। हिंदी का प्रथम उपन्यास लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरू' माना जाता है। श्रीनिवासदास के बाद हिंदी के सैकडों उपन्यासकारों ने इस विधा को समृद्ध किया है। उसमें हिंदीतर भाषी भी शामिल है। खासकर तेलुगु भाषी हिंदी उपन्यासकारों ने आधुनिक काल में बड़ी संख्या में उपन्यास लिख कर उसे समृद्ध किया है। तेलुगु भाषी हिंदी उपन्यासकारों में आरिंगपूडि रमेश चौधरी, बालशौरि रेड्डी, इब्रहीम शरीफ, दंडमूडि वेंकट कृष्णा राव, बी.वी. सुब्बाराव हरिकिशोर, प्रो. के. एल. व्यास, डॉ. रोहिताश्व आदि उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों के द्वारा मुख्यतया तीन प्रकार के हिंदी उपन्यास रचे गए हैं। सामाजिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक इसमें शामिल हैं।

तेलुगु भाषी हिंदी उपन्यासकारों में श्री आरिंगपूडि रमेश चौधरी का अनुपम स्थान है। उनका जन्म 28 नवंबर 1922 में आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के उय्यूरु नामक गांव में हुआ था। वे एक ग्रामीण मध्य वर्गीय परिवार के रहे हैं।

उन्होंने हिंदी में पच्चीस उपन्यास, सात कहानी संग्रह, चार नाटक, चार अनूदित रचनाएँ, बाल साहित्य आदि लिखा है। उनके उपन्यासों में आदरणीय, पतितपावनी, धन्य भिक्षु, सारा संसार मेरा, नदी का शोर आदि प्रसिद्ध हैं। उनके उपन्यासों में वस्तु वैविध्य को लीक रहती है। उनके उपन्यासों में मुख्यतया परंपराओं एवं रूढ़िवादिता के प्रति सचेष्ट एवं जागरूक होने की पुकार तथा मानवीय मूल्यों व मानवता को बचाये रखने का आग्रह मिलता है। आरिगपूडि का प्रथम उपन्यास 'भूले-भटके' सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने रूढ़िगत परंपरा, जाति-पांति और वेश्या वृत्ति जैसी सामाजिक विद्रूपताओं का खंडन करते हुए समाज की विपन्नावस्था को मिटाने की कामना व्यक्त की है। दक्षिण भारत में उस समय ब्राह्मण विरोधी आंदोलन चल पड़ा था। परंपरा और वर्णव्यवस्था पर आस्था कम होने लगी थी।

उपन्यासकार ने इस में सत्यं और नलिनी के पात्रों के माध्यम से जाति-पांति के बंधन तोड़कर स्वतंत्र जीवन बिताने का संदेश दिया है। 'खरे खोटे' (1957) उपन्यास की वस्तु नारी चेतना है। इसके अतिरिक्त उपन्यास में ग्रामीण जनता की जीवन-शैली, पर्व एवं त्योहार, रीति-रिवाज तथा ग्रामीण संस्कृति का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त देश को आज़ाद बनाने के लिए स्त्रियों के द्वारा की गयी कोशिशों का चित्रण भी किया गया है। 'दूर के ढोल' आरिंगपूडि का राजनीतिक उपन्यास है। इसमें उन्होंने वर्तमान राजनीतक जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। खासकर चुनावी संबंधी चेतना इसमें अधिक वर्णित है। रमेश चौधरी, अंबिका देवी, चेट्टियार और अन्नामलै जैसे पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने युगीन राजनीतिक विसंगतियों तथा प्रजा-तंत्र की व्यवस्थागत दुर्बलताओं पर प्रहार किया है।

आरिगपूडि का 'आदरणीय'(1958) भारतीय राजनीति को प्रतिबिंबित करनेवाला उपन्यास है। इसमें राजनीति के अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। आरिगपूडि जी का 'धर्मभिक्षु' (1958) एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें सिद्धार्थ गौतम से संबंधित इतिहास का वर्णन मिलता है। आरिगपूडि जी का 'अपनी करनी' (1959) एक और श्रेष्ठ उपन्यास है। अपने-पराये (1960) भी एक श्रेष्ठ राजनीतिक उपन्यास है। आरिगपूडि जी का 'यह भी होता है' (1961) एक पारिवारिक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु पारिवारिक जीवन से संबंधित है। आरिगपूडि जी का 'साठ-साठ' (1962) एक श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है। इसमें समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों, जर्जर संस्कारों एवं रूढ़िगत परंपराओं पर आधुनिक दृष्टिकोण से अपने विचार व्यक्त किए गए हैं।

आरिगपूडि जी के अलावा 'शबरी' रेड्डी जी का पहला उपन्यास है जो सन् 1959 में प्रकाशित हुआ था। यह एक पौराणिक उपन्यास है। 'जिंदगी की राह' (1962) एक चर्चित सामाजिक उपन्यास है। 'ये बस्ती ये लोग' (1963) एक और सशक्त सामाजिक उपन्यास है। 'भग्न सीमाएँ' (1965) एक और सशक्त सामाजिक उपन्यास है। इसमें मध्यवर्गीय हिंदू समाज की वैवाहिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। 'बैरिस्टर' (1967) एक और सामाजिक उपन्यास है। इस में मानव मन के संस्कारों और सहज इच्छाओं के संघर्ष को मूर्त रूप दिया गया है। 'स्वप्न और सत्य' (1968) उपन्यास स्त्री-पुरुष संबंधों पर प्रकाश डालनेवाला है। इसकी पृष्ठ भूमि मुख्यतया दक्षिण भारतीय जीवन ही है। 'धरती मेरी माँ' (1969) वसुधैव कुटुंबकम की अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक चेतना को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है। 'लकुमा' (1969) एक और लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें साम्राज्य की रक्षा के लिए आत्मघात करनेवाली देवदासी लकुमा की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

श्री बी. वी. सुब्बाराव जी 'हरिकिशोर' एक और सुशिक्षित तेलुगु भाषी हिंदी उपन्यासकार हैं। इनका 'उफान' नाम से एक सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हुआ है। इसमें जीवन की उमंग और सच्चे प्रेम का महत्व चित्रण करने का

सफल प्रयास किया गया है। इन उपन्यासकारों के अलावा हिंदी में उपन्यास लिखनेवालों में श्री पी. दामोदर शास्त्री का नाम उल्लेखनीय हैं। 'समाज की वेदी' इनका एक सामाजिक उपन्यास है।

8.3. आन्ध्रों का हिंदी कहानी साहित्य

तेलुगु भाषी हिंदी कहानीकारों ने उपन्यासों की तुलना में कहानियाँ अधिक रची हैं। फिर भी इन के द्वारा रचित कहानियाँ पुस्तकाकार में कम मिलती हैं। उपन्यास लिखनेवाले लगभग सभी लेखकों ने कहानियाँ भी लिखी हैं। इस दृष्टि से सबसे पहला नाम आरिगपूडि रमेश चौधरी का लिया जा सकता है। इनकी दर्जनों कहानियाँ विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इनकी कहानियाँ 'भगवान भला करें', 'कुबडा धोबी', 'जीने की सज़ा', 'बंद आँखे' नामक संग्रहों में संग्रहीत हैं। आरिगपूडि की कहानियों में आन्ध्रों का पारिवारिक जीवन अभिव्यंजित हुआ है। उनकी कहानी 'पितृदेवो भव' में पारिवारिक जीवन का विघटन चित्रित हुआ है। पिता के विवाहेतर संबंध को क्षमा करने का संस्कार पुत्र में नहीं है। इसलिए प्रोफेसर कृष्णमूर्ति अपने पिता से संबंध विच्छेद कर लेता है। आरिगपूडि की 'शैतान का कारखाना' पारिवारिक जीवन के एक और पक्ष को प्रतिबिंबित करनेवाली कहानी है। अकाल और सूखे के कारण जीविका के लिए शहर जानेवाले मुत्तु पत्नी के चरित्र पर संदेह करके उसके तथाकथित अवैध पुत्र मुन्नु और पालतू कुत्ता दोनों को कीचड़ में गला दबाकर उन्हें भूख की पीड़ा से मुक्ति दिलाता है। अपनी असहायता और असमर्थता को छिपाता है। अवैध संतान के प्रति घृणा पूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अर्थ विपर्यय के परिप्रेक्ष्य में घटित इस कहानी में यह सिद्ध किया गया है कि पारिवारिक जीवन के विघटन का प्रधान कारण नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन है, जो शहरीले जीवन के तड़क-भड़क और विवाहेतर यौन संबंधों के कारण बना है। पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के रागात्मक संबंध, एक के अभाव में दूसरे की वेदनापूर्ण दशा, द्वितीय विवाह के द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने की स्थिति को अस्वीकार करना आदि रागात्मक घटनाओं के माध्यम से 'लाचार' में पारिवारिक जीवन के कोमल पक्ष का उद्घाटन किया गया है।

श्री आरिगपूडि की कहानियों में आन्ध्र के कृष्णा जिले के ग्रामीण जीवन में व्याप्त राजनीतिक चेतना का चित्रण हुआ है। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति सजग उत्सुकता का विशद विवरण है। परवर्ती कहानियों में महानगरीय जीवन और नगरीय जीवन की चर्चा अधिक थी। अपना निवास स्थान मद्रास केंद्र बनाकर वहाँ के तमिल वातावरण और जीवन विधान को सांस्कृतिक धरातल पर निखारने की उन्होंने कोशिश की है। 'भारत छोड़ो' राष्ट्रीय आंदोलन की घटना का प्रभाव उनकी अधिकांश कहानियों पर रहा। ग्रामीण जीवन का परित्याग करके महानगरीय सभ्यता की ओर आकृष्ट होनेवाले लोगों में ग्राम जीवन की ओर आकृष्ट होने का परिवर्तन दिखाया गया है। राजनीतिक दुर्व्यवस्था के कारण उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों में महँगाई तज्जनित मकान की तंगी से लेकर राशन की लंबी कतार, बसों और यातायात की समस्याएँ, नौकरी पाने की जोड़-तोड़, व्यवस्था का भ्रष्ट रूप इन की कहानियों के केंद्र बिंदु बने हैं। सरकारी योजनाओं पर व्यंग्य भरी आलोचना करनेवाले कहानीकार आरिगपूडि के विचार 'दया की कीमत' में इस प्रकार व्यक्त हुआ है कि यह तो काफी नहीं है कि सिर्फ धूप, पानी से बचने के लिए छत दे दी जाय और मौत को धोखा देने के लिए दो चार कौर रोटी दी जाय।

आरिगपूडि की कहानियों में आर्थिक शोषण का चित्रण है। उनकी कहानी 'शैतान का कारखाना' के नायक मुत्तु सरकारी औद्योगिक नीति के शिकार बनकर शहर जाते हैं। जिससे अपनी पत्नी के जिस्म का सौदा होता हुआ

देखा न गया। इसका प्रधान कारण अर्थ केंद्रित सामाजिक विसंगतियाँ हैं। इनके कहानियों में धर्म को उसकी सीमित दायरे से मुक्त करते हुए अशिक्षा के कारण उत्पन्न अंधविश्वासों का भी चित्रण किया गया है।

'डॉ. बालशौरि रेड्डी' जी एक कुशल तेलुगु भाषी हिन्दी कहानीकार हैं। उनके अब तक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 1. बैशाखी 2. बालशौरि रेड्डी की प्रतिनिधि कहानियाँ। इन दोनों में उनकी दर्जन कहानियाँ संग्रहीत हैं। चाँदी का जूता, भूखा हडताल, वैशाखी, पापी चिरायु, अतृप्त कामना, शांति के पथ पर, अज्ञात की ओर आदि उनकी कुछ चर्चित कहानियाँ हैं। डॉ. रेड्डी जी की कहानियों में अपने समय के समाज की कतिपय प्रवृत्तियाँ प्रतिबिंबित हुई हैं। 'बैशाखी' दांपत्य जीवन की समस्याओं को उजागर करनेवाली कहानी है। 'घर और गृहस्थी' पारिवारिक मूल्यों की कहानी है। 'जब आंखे खुली' नगर और गाँव की प्रभावशाली कहानी है। 'पापी चिरायु' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। 'भूख हडताल' एक असंगठित क्षेत्र के श्रमजीवी की कहानी है। चांदी का जूता डॉ. रेड्डी जी की चर्चित कहानियों में एक है। 'अतृप्त कामना' माँ-पुत्र के संबंधों पर प्रकाश डालनेवाली कहानी है। 'आजादी के दीवानों' में आज़ादी की लड़ाई में दक्षिण भारत की महिलाओं के योगदान का वर्णन किया गया।

श्री इब्राहीम शरीफ़, डॉ. पी.ए. राजु, श्री दंडमूडि महीधर, डॉ. अहिल्या मिश्र, पवित्रा अग्रवाल, श्रीमती प्रतिभा गर्ग, श्रीमती विनोदिनी गोयन्का, डॉ. रोहिताश्व आदि तेलुगु भाषी हिन्दी कहानीकार हैं।

8.4. आन्ध्रों का हिंदी नाटक साहित्य

आन्ध्र में नाटक अत्यंत प्राचीन और लोकप्रिय विधा है। आन्ध्र में हिंदी नाटकों का लेखन आन्ध्र के लोक नाटकों के अनुसरण में हुआ है। गाथा सप्तशती, वात्स्यायन कामसूत्र, नाट्य शास्त्र आदि ग्रंथों से यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि आन्ध्र - जनता नृत्य, गीत आदि ललित कलाओं में निपुण थी। नाट्य शास्त्र के बाद नाटक के लिए लोकप्रिय ग्रंथ 'अभिनव दर्पण' है। इसके लेखक नंदिकेश्वर आन्ध्र के माने जाते हैं। इसका प्रमाण यही है कि इस ग्रंथ की सभी उपलब्ध प्रतियाँ तेलुगु लिपि में हैं, यहाँ तक कि विश्व भारती में सुरक्षित प्रति भी तेलुगु लिपि में है। इस प्रकार अतिप्राचीन काल से ही आन्ध्र - जनता ने संगीत, नाटक आदि ललित कलाओं में विशेष उन्नति प्राप्त की थी। इसका एक और प्रमाण है कि इनसे संबंधित लोक नाट्य रूप भी आन्ध्र में अति प्राचीन काल से लोकप्रिय हैं। वीथी नाटक, पगटि वेशगाल्लु, हरिकथा, यक्षगान, बुर्राकथा, उग्गुकथा, बयलाटलु जैसे लोकनाट्य रूप तेलुगु प्रदेश में अतिप्राचीन काल से लोकप्रिय हैं।

आन्ध्र में नाटक के प्रचलन का श्रेय धारवाड़ नाटक समाज को दिया जाता है। इस समाज के प्रभाव से प्रेरित होकर जिन-जिन नाटक समाजों की स्थापना हुई, उनमें कुछ नाटक समाजों ने तेलुगु के अतिरिक्त हिंदी में भी नाटक लिखकर खेला है। तेलुगु भाषी हिंदी नाटककारों में सर्व प्रथम नाम श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि का है। उनका जन्म रुधिरोद्गारी संवत्सर के वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन तदनुसार ता. 23-04-1863 ई. गुरुवार के प्रातकाल हुआ। सन् 1880 में ही धारवाड़ नाटक कंपनी का आन्ध्र में आगमन हुआ था। इन के प्रभाव से पुरुषोत्तम कवि जी ने नाटक रचना शुरु की थी।

डॉ. चावलि सूर्यनारायण मूर्ति जी एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी नाटककार हैं। इन्होंने प्रमुखतः पौराणिक नाटक लिखे हैं। उनके नाटकों में 'महानाश की ओ' तथा 'सत्यमेव जयते' प्रमुख हैं। 'महानाश की ओर' तीन अंकोंवाला नाटक है। इसमें महाभारत कथा वर्णित है। पांडवों के अज्ञातवास से लेकर कुरुक्षेत्र युद्ध के पूर्व तक की कहानी इसमें वर्णित है। यह एक प्रकार का दुखांत नाटक है। यह नाटक श्री मूर्ति जी को एक सफल नाटककार के

रूप में सिद्ध करता है। कथावस्तु के अनुरूप नाटकीय कथोपकथन रचना को सजीव बनाता है। 'सत्यमेव जयते' हरिश्चंद्रोपाख्यान पर आधारित नाटक है। इसमें तीन अंक हैं। यह सुखांत नाटक है। चरित्र चित्रण मूल कथा के अधीन ही नाटकोचित परिवर्तन से प्रस्तुत है। मूर्ति जी का एक सामाजिक नाटक भी प्राप्त होता है। नाटक का शीर्षक 'समझौता' है। इसमें त्रिकोणात्मक प्रेम के माध्यम से मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए मानवता की बलिवेदी पर प्रणय के बलिदान को उपयुक्त निरूपण किया गया है। जीवन के अनुकूल हर एक व्यक्ति समझौता करना सीख ले। छोटे संवाद, प्रभावपूर्ण शैली, समयोचित गीतों से युक्त यह नाटक रंगमंच की दृष्टि से भी उपयुक्त एवं अभिनययोग्य है।

प्रसिद्ध तेलुगु भाषी हिंदी कथाकार श्री आरिगपूडि जी एक कुशल नाटककार भी हैं। 'कोई न पराया' उनका चर्चित नाटक है। यह एक सामाजिक नाटक है। जमींदारों के परिवारों में उपलब्ध कुप्रथाएँ, उनसे शोषित गांव, आधुनिक शिक्षा तथा सभ्यता के प्रभाव से उत्पन्न समस्याएँ, गाँवों की महाजनी शोषण से मुक्त करना तथा सहयोगी भावना बढ़ाना आदि इस नाटक में चर्चित कुछ कथ्यमूलक विशेषताएँ हैं। नाटककार का प्रधान उद्देश्य गाँवों को नंदनवन बनाने के काल्पनिक सत्य का साक्षात्कार करना है। सजीव और सहज संवाद पात्रों को जीवंत बनाते हैं। भाषा पर आरिगपूडि जी का अधिकार होने पर भी इसमें उनके उपन्यास तथा कहानियाँ जैसी सफलता दिखाई नहीं पड़ती है।

प्रो. वसंत चक्रवर्ती एक और उच्च शिक्षा प्राप्त आन्ध्र के हिंदी नाटककार हैं। प्रसाद की भांति उन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखने के लिए शोध सामग्री जुटायी है। शोध - सामग्री के बल पर उन्होंने 'पुलकेशिन नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा है। इसके माध्यम से उन्होंने प्राचीन पात्रों के प्रतीक के द्वारा राष्ट्रीय चेतना को उत्प्रेरित करने का कार्य किया है। यह दक्षिण के प्रसिद्ध चालुक्य महाराज पुलकेशिन द्वितीय के राज्याभिषेक संबंधी रचना है जिसका निर्वाह षड़यंत्रों की वृष्टि के बीच किया गया है। इसमें ऐतिहासिकता तथा नाटकीयता का समन्वय है।

श्री चलसानि सुब्बाराव एक और तेलुगु भाषी हिंदी नाटककार हैं। 'रानी रुद्रम्मा' नाम से उन्होंने एक ऐतिहासिक नाटक लिखा है। इसमें काकतीय वंश की रानी रुद्रम्मा की विजय यात्राओं का प्रभावशाली नाटकीकरण के साथ रानी की युद्धनीति और शासन विधान का सुंदर विवरण प्रस्तुत किया गया है। सफल चरित्र-चित्रण, प्रवाहपूर्ण मुहावरेदार भाषा जो पात्रानुकूल भी है, इस नाटक की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों पर अनुसंधान कार्य करने के कारण वे इतिहास के ढाँचे पर रक्त मांस का आवरण चढ़ाकर ऐतिहासिक नाटक लिखने में पूर्णतः सफल हुए हैं।

तेलुगु भाषी हिंदी नाटककारों में श्री चोडवरपु राम शेषय्या का ऐतिहासिक नाटककार के रूप में विशिष्ट स्थान है। इन्होंने 'बोब्बिलि युद्धमु' तथा 'रानी मल्लम्मा' नामक दो ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। ये दोनों नाटक दुखांत हैं। दोनों नाटकों में तीन-तीन अंक हैं। वैसे दोनों की कथावस्तु एक समान है किंतु दूसरे नाटक में रानी मल्लम्मा के चरित्र को प्रधान रूप से उजागर करने का प्रयास किया गया है। दोनों नाटकों की कथावस्तु आन्ध्र की प्रसिद्ध रियासत बोब्बिली से संबद्ध है। यह कथा आन्ध्र के पौरुष तथा आन्ध्र की स्त्रियों के आत्मबलिदान का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करती है।

श्री राम शेषय्या जी का 'गृहिणी' नामक एक सामाजिक नाटक भी प्राप्त होता है। इसमें नाटककार ने पाश्चात्य 'लिब' आंदोलन से प्रभावित होकर, घर की अपेक्षा समाज सेवा करने को जीवन का ध्येय माननेवाली लीला का चरित्र चित्रण कर, यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्त्री का क्षेत्र यही है और वहीं रहकर यह समाज की सेवा

इतोधिक रूप से कर सकती है। यह नाटक भी कई बार सफलता के साथ खेला गया है। नाटकों की संख्या तथा नाटकीय कला की दृष्टि वर्तमान तेलुगु भाषी हिंदी नाटककारों में श्री राम शेषय्या जी प्रमुख माने जा सकते हैं। ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में इन्हें अत्यधिक सफलता मिली है।

श्री जी. जे. हरिजीत (जी. जयसिंहा रेड्डी) बैंगलूर में बसे तेलुगु भाषी हिंदी नाटककार हैं। उनका ऐतिहासिक नाटक 'हुमायून' अत्यधिक लोकप्रिय है। चित्तौड की रानी कर्मवती मुगल बादशाह को राखी भेजकर उससे रक्षा प्राप्त करती है, यही इसकी मुख्य कथावस्तु है। सशक्त संवाद नाटक को जीवंत बनाने में सहायक हुए हैं। 'रंगायन' नामक संकलन में भी जी. हरिजीत के कुछ ऐतिहासिक एवं सामाजिक एकांकी नाटक संग्रहीत हैं। स्वर्गीय कामेश्वर राव का नाटक 'बदला' स्वराज्य आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना को जगानेवाला है जो मद्रास सरकार से जब्त किया गया है।

उपर्युक्त नाटककार तथा उनके चर्चित नाटकों के अलावा कई ऐसे हिंदी नाटक प्राप्त होते हैं जो तेलुगु से अनुवाद किए गए हैं। अनुवाद करनेवाले लेखकों में पी. दामोदर शास्त्री, श्री बालशौरि रेड्डी, श्री वेमूरी राधाकृष्ण मूर्ति, श्री एम. सुब्बाराव आदि प्रमुख हैं। कुछ मौलिक नाटकों के अलावा कुछ गीति नाटक भी हैं। आकाशवाणी विजयवाडा केंद्र से हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन करते हुए श्री सुमन तथा सरोजिनी निर्मला आदि ने तेलुगु प्रदेश में रहते हुए हिंदी नाटकों की बडी सेवा कर रहे हैं। उनके प्रमुख रेडियो नाटकों में 'दहेज का गला घोंट दो', 'शादी की शर्तें' आदि प्रमुख हैं।

तेलुगु भाषी हिंदी नाटककारों ने नाटकों के साथ-साथ एकांकी भी लिखे हैं। इनमें अधिकांश अधिक सफल भी हुए हैं। संख्या की दृष्टि से ये कम ही हैं। अधिकांश एकांकी पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए हैं। संग्रहों के रूप में उपलब्ध होनेवाले एकांकी संख्या में कम ही हैं। संग्रहों के रूप में उपलब्ध कुछ एकांकियों का परिचय ही यहाँ दिया जा रहा है। अब तक प्रकाशित संग्रहों में सत्य की खोज (श्री बालशौरि रेड्डी), नेपथ्य, बिजली और बारिश (आरिगपूडि), भौरों का पहाड (डॉ. राजशेषगिरि राव), राष्ट्र की वेदी पर (डॉ. एन. एस. दक्षिणा मूर्ति) आदि उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु भाषी हिंदी कथाकार श्री बालशौरि रेड्डी के एकांकी संग्रह 'सत्य की खोज' में ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक एकांकी संग्रहीत हैं। 'घमंड का नतीजा' महाभारत के पौराणिक आख्यान पर आधारित है। इसमें द्रौपदी के लिए पुष्प लाने जानेवाले भीम का हनुमान की शक्ति के समक्ष नतमस्तक होने की कथा है। पौराणिक एकांकी में उर्दू के शब्दों का प्रयोग खटकता है। 'सत्य की खोज' सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) के मृत्यान्वेषण पर आधारित है। यह एकांकी छोटा है, किंतु नाटकीय लक्षणों से युक्त होकर प्रभावशाली बन पड़ा है। 'भक्त पुरंदरदास' में दक्षिण के महान भक्त तथा गेयकार पुरंदर दास के जीवन की एक घटना का चित्रण किया गया है। 'पन्ना का त्याग' में राजस्थान के इतिहास की उज्ज्वलतम मणि पन्ना दाई की स्वामी भक्ति का परिचय दिया गया है। 'किस्मत' नामक एकांकी में अलीबाबा की कथा है जो चोरों को धोखा देकर धनी बन जाता है।

श्री आरिगपूडि जी के 'नेपथ्य' संग्रह में ऐतिहासिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के एकांकी संग्रहीत हैं। 'नेपथ्य' संग्रह का 'बंदी' एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें बादशाह शाहजहां के आखिरी दिनों की असहाय स्थिति का वर्णन किया गया है। इस संग्रह के पडोसी, खंडहर, बस एक साल और, एकांकी, कटा कोट आदि सामाजिक एकांकी हैं। 'बिजली और बारि'' श्री आरिगपूडि जी का रेडियो रूपकों का संकलन है। इसमें 14 एकांकियाँ संग्रहीत हैं।

डॉ. एन. एस. दक्षिणा मूर्ति जी का 'राष्ट्र की वेदी पर' एक सामाजिक एकांकियों का संग्रह है। इसमें एक ऐतिहासिक तथा बाकी छः सामाजिक एकांकी संग्रहीत हैं। डॉ. मूर्तिजी की भाषा सुगठित तथा संस्कृत निष्ठ है। शेष एकांकी सामाजिक विषयों पर आधारित है। इन एकांकियों की भाषा सरल एवं प्रभावशाली है। इनके सभी एकांकी रंगमंच के अनुकूल हैं। इसलिए कई बार खेले गए हैं।

डॉ. कर्ण राजशेषगिरि राव एक और उच्च शिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी एकांकीकार हैं। उनके 'भौरों का पहाड़' में ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकी संकलित हैं। 'भौरों का पहाड़' शीर्षकीय एकांकी में सिंहाचलम के प्रसिद्ध मंदिर तथा उसके पुजारी की कथा अंकित है। 'तिम्मरुसु की आंखें' शीर्षक एकांकी श्री कृष्ण देवराय तिम्मरुसु को अपने पुत्र का वध करनेवाला समझकर उन्हें जेल में डाल कर अंधा बना देता है तो तिम्मरुसु अपने अतीत जीवन का स्मरण करके पश्चात्ताप करता है। 'सच्चा धर्म' शीर्षक एकांकी में श्रीकृष्णदेवराय के आदेशानुसार विश्वनाथ नायक अपने विद्रोही पिता नागम नायक पर आक्रमण कर, उसे हराकर, सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस एकांकी में सच्ची राज-भक्ति और राज सेविका के सच्चे धर्म का मार्मिक चित्रण किया गया है। डॉ. राव जी का रचना- विधान अत्यंत प्रभावशाली है। आप के एकांकी सफलतापूर्वक खेले गए हैं। डॉ. राव जी की भाषा पात्रानुकूल तथा गंभीर प्रवाह से युक्त है।

इस सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि तेलुगु भाषी हिंदी एकांकीकारों की अधिकांश रचनाओं का आधार आन्ध्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ही है। चरित्र चित्रण को महत्व देने के उद्देश्य से इनकी रचना हुई है। रंगमंच की अभिनेयता की दृष्टि में न रखकर रचना करने के कारण लंबे संवाद प्रस्तुतीकरण में खटकते कुछ एकांकियों में कई दृश्यों के भरमार के कारण एकांकी की परिभाषा के अनुरूप उसके विभिन्न तत्वों का समावेश नहीं किया गया है। सामाजिक एकांकियों का कोई लक्ष्य नहीं, आधुनिकता के बोध को प्रतिपादित करनेवाली शिल्पगत वैविध्यता नहीं है। दहेज, कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि आधुनिक समस्याओं को व्यंग्य - प्रधान शैली में प्रतिपादित किया गया है। यह पाठकों को आकर्षित करने का सफल प्रयत्न है। इस क्षेत्र में बहुत कुछ लेखन करना अभी बाकी है।

8.5. आन्ध्रों का हिंदी निबंध - साहित्य

निबंध विधा आज के पाठकों की प्रिय विधा है। तेलुगु भाषी हिंदी लेखकों की प्रिय विधा भी यही है। आन्ध्र के हिंदी निबंधकारों की संख्या अत्यधिक है। आन्ध्र के लगभग तीनों प्रदेशों के लेखकों ने इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यानी तटवर्ती आन्ध्र के लेखक, रायलसीमा के लेखक तथा तेलंगाना प्रदेश के लेखकों ने इसमें योगदान दिया है। तेलुगु भाषी हिंदी लेखकों के द्वारा लिखे गए हिंदी निबंध सभी प्रकार के प्राप्त होते हैं। वैचारिकता प्रधान हिंदी निबंधों से लेकर ललित निबंध, साहित्यिक शोध परक निबंध, तुलनात्मक शोध निबंध, विभिन्न पर्व त्योहारों के संदर्भ में लिखे गए वर्णनात्मक निबंध आदि इसमें शामिल हैं। तेलुगु भाषी हिंदी लेखकों ने कविता के साथ निबंध विधा का भी बहुत पहले से प्रयोग किया है। तेलुगु भाषी हिंदी निबंधकारों के अधिकांश निबंध प्रमुखतः पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए हैं।

निबंध लिखनेवाले तेलुगु भाषी हिंदी लेखकों में सर्वप्रथम नाम श्री मोटूरि सत्यनारायण का लिया जा सकता है। वे बड़े भाषाविद् थे। राजभाषा हिंदी, संपर्क भाषा तथा राष्ट्रभाषा के क्षेत्र में उनका अपूर्व योगदान है। वे प्रयोजनमूलक हिंदी के जनक माने जाते हैं। उनके पास विचारों का अटूट स्रोत था। उन के कितने ही विचार जो समय-समय पर अपने भाषणों में व्यक्त किए थे, लिपिबद्ध न होने के कारण आज अनुपलब्ध हैं।''हिंदी प्रचार का इतिहास'

नामक अभिनंदन ग्रंथ के द्वितीय भाग में उनके 18 आलेख प्रकाशित हैं। ये एक प्रकार से निबंध ही हैं। इनके शीर्षकों से यह ज्ञात किया जा सकता है कि उन के चिंतन का दायरा कितना विस्तृत और गहरा था।

श्री मोटूरि जी की शोधपरक तथा पैनी दृष्टि उभरी है। हिंदी तथा भारतीय भाषाओं पर उन्होंने व्यापक चिंतन मनन किया था। ये लेख उसके ठोस एवं आधारभूत प्रमाण हैं। इन आलेखों के अतिरिक्त उन के और ग्रंथ तथा आलेख प्रकाशित हुए हैं। 1. समन्वय सूत्र हिंदी: यह रचना भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित है। डॉ. राजेंद्र प्रसाद स्मारक व्याख्यान माला के अंतर्गत सन् 1979 में इसे प्रकाशित किया गया था। 2. हिंदी का भावी रूप (आकाशवाणी पुस्तक माला- 2): आकाशवाणी द्वारा प्रसारित वार्तालापों में से एक वार्ता मोटूरि जी की इस कृति में संग्रहीत है। इसका प्रकाशन भी 1956 में सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा किया गया है। 3. भारतीय भाषाओं में विश्वकोश आलेख: दक्षिण भारत (त्रैमासिक), अंक-1, अक्तूबर-नवंबर, 1995, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास। 4. गांधीजी और मैं (आलेख), हिंदी प्रचार समाचार, जुलाई, 1995, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास। 5. भाषा द्वारा भारत के साथ तादात्म्य आलेख, हिंदी प्रचार समाचार, नवंबर, 1995, मद्रास। 6. भाषा संबंधी विचार अनूदित (आलेख), हिंदी प्रचार समाचार अगस्त, 1995 - मद्रास। 7. श्री मोटूरि सत्यनारायण का दीक्षांत भाषण, 10 जनवरी 1993 को 57 वें दीक्षांत समारोह के अवसर पर प्रकाशित, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास। इनके अतिरिक्त कितनी ही रचनाएँ उनकी हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। मोटूरि जी की चिंतनशैली गंभीर होती है। सरल भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने में वे सिद्धहस्त हैं।

आचार्य जी.सुंदर रेड्डी एक और सुशिक्षित तेलुगु भाषी हिंदी निबंधकार हैं। उनका जन्म 10 अप्रैल, 1918 को नेल्लूरु जिले के बत्तुलपल्लि गांव में हुआ था। उच्चशिक्षा प्राप्त करके उन्होंने आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टणम में कई वर्षों तक आचार्य पद पर काम किया। आचार्य रेड्डी जी ने अनेक मौलिक पुस्तकों की रचना की है। उनमें निबंध - संग्रह ही अधिक हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में 1. मेरे विचार (निबंध-संग्रह) 2. साहित्य और समाज (निबंध-संग्रह) 3. दक्षिण की भाषाएँ और उनका साहित्य (आलोचना) 4. हिंदी और तेलुगुः एक तुलनात्मक अध्ययन (आलोचना) 5. वैचारिकी (निबंध-संग्रह) 6. शोध और बोध (निबंध-संग्रह) आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त आचार्य रेड्डी जी ने अनेक ग्रंथों का संपादन भी किया है। उनके संपादित ग्रंथों में 'हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं के समानरूपी भिन्नार्थी शब्द','हिंदी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान', 'अंतर भारती' आदि प्रमुख हैं।

8.6. आन्ध्रों का हिंदी आलोचना साहित्य

अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में आन्ध्र में आलोचना साहित्य का अधिक विकास हुआ है। आज आलोचना साहित्य भी सृजनात्मक साहित्य के अंतर्गत ही माना जा रहा है। आन्ध्र में हिंदी के प्रचार और प्रसार के साथ इसका बहुत विकास हुआ है। खास कर विश्वविद्यालयों में हिंदी विभागों के खोलने के बाद वहाँ शोध कार्य शुरु हो गए हैं। इन शोधकार्यों में अधिकांश आलोचनापरक ही होते हैं। इसलिए विश्वविद्यालयों के हिंद- विभागों के विकास के साथ ही यहाँ पर आलोचना साहित्य का विकास हुआ है। इस क्षेत्र में आन्ध्रों की मौलिक देन है। खासकर तेलुगु साहित्य और संस्कृति से संबंधित आलोचना इन्हीं की देन है। इसके अतिरिक्त हिंदी तेलुगु तुलनात्मक अध्ययन संबंधी आलोचना भी इन्हीं की महत्वपूर्ण देन है। यहाँ के विद्वान हिंदी की रचनाओं की मौलिक आलोचना भी प्रस्तुत की है। इस रूप में आन्ध्र में समृद्ध आलोचना साहित्य प्राप्त होता है।

आन्ध्र में हिंदी आलोचना का शुभारंभ मोटूरि सत्यनारायण जैसे युगकर्ताओं की देन से शुरु होता है। उन्होंने कम अवश्य लिखा है किंतु वह बहुविध है तथा नयी सोच और नई दिशाओं की तलाश में आगे बढ़ाता है। उनके कृतित्व के अवलोकन से पता चलता है कि उनके चिंतन में संकुचित विचारों को कोई भी स्थान नहीं है। उन्होंने हिंदी, राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, नागरी लिपि, प्रयोजनमूलक हिंदी, भारतीय संस्कृति और धर्म पर प्रगतिवादी दृष्टिकोण से सकारात्मक सोच के आधार पर मनन किया है। भारतीय भाषाओं पर उन्होंने व्यापक चिंतन मनन किया था। ये लेख उसके ठोस एवं आधारभूत प्रमाण हैं। इन लेखों के अतिरिक्त उन्होंने आलोचना के ग्रंथ तथा आलेख लिखे हैं। वे इस प्रकार हैं।

1. समन्वय का सूत्र हिंदी, यह भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित ग्रंथ है। डॉ. राजेंद्र प्रसाद स्मारक व्याख्यान माला के अंतर्गत सन् 1979 में इसे प्रकाशित किया गया था, 2. हिंदी का भावी रूप (आकाशवाणी पुस्तक माला - 2), 3. भारतीय भाषाओं में विश्व कोश आलेख, 4. गांधीजी और मैं (आलेख), 5. भाषा द्वारा भारत के साथ तादात्म्य आलेख, 6. भाषा संबंधी विचार अनूदित (आलेख), 7. श्री मोटूरि सत्यनारायण का दीक्षांत भाषण। ये सभी मोटूरिजी की कुशल आलोचना शक्ति के उद्गार माने जा सकते हैं।

प्रो. एस.टी. नरसिंहाचारी एक और कुशल तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। इनका जन्म 8 अक्तूबर 1927 को आन्ध्र प्रदेश के काकिनाडा में हुआ। उच्चशिक्षा प्राप्त आचार्य - आलोचक हैं। इनको आचार्य केशवप्रसाद मिश्र जैसे गुरुदेवों का आश्रय प्राप्त हुआ है। इन पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की समीक्षा का गहरा प्रभाव रहा है। काव्य के सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन में विशेष अभिरुचि के कारण सौंदर्यशास्त्र को दार्शनिक उलझन से मुक्त करके व्यावहारिक धरातल पर ले जाने का प्रयत्न इन्होंने किया है। हिंदी आलोचना को इनकी यही महती देन है। हिंदी आलोचना से संबंधित इनकी कुल पांच पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 1. सौंदर्यतत्व निरूपण, 2. तेलुगु साहित्य : संदर्भ और समीक्षा, 3. सूर की सौंदर्य चेतना, 4. साहित्यिक अभिरूचि और समीक्षा और 5. प्रसाद की कहानियाँ और प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण। इसके अतिरिक्त उनकी छायावादी आलोचना के साथ सौंदर्य तत्व पर स्वतंत्र और अनूदित ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

प्रो. आई. पांडुरंगाराव एक और तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। इनका जन्म इलपावुलूरु में हुआ है। ये स्वतंत्र प्रतिभावान लेखक हैं। हिंदी और तेलुगु के आलोचक, अनुसंधाता, कवि, साहित्यकार और अनुवादक हैं। 'आन्ध्र हिंदी रूपक' आप का शोध-प्रबंध है। इस में हिंदी तथा तेलुगु के नाटकों की समीक्षा है। इनका चिंतन काफी गहन होता है। भाषा और साहित्यों में उपलब्धियों को प्राप्त करना तथा उनको अपनाकर आलोचना और अनुसंधान प्रक्रियाओं से जुड़ना महत्व रखता है। रावजी ने इन क्षेत्रों में नयी स्थापनाएँ की हैं। 'तेलुगु में महाभारत की रचना' शीर्षक लेख में उनका कथन आपके दृष्टिकोण का सूचक है। उनके हिंदी में रचित आलोचनात्मक निबंध उनकी प्रौढ़ता और पांडित्य के उदाहरण हैं। तेलुगु में भी उनकी स्वतंत्र आलोचनात्मक रचनाएँ हैं और दार्शनिक आध्यात्मिक संघर्ष कृतियाँ हैं।

प्रो. पी. आदेश्वर राव एक और उच्चशिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। सफल कवि के रूप में ही नहीं, अपितु साहित्य के प्रौढ़ आलोचक के रूप में भी आचार्य जी ने अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। उनके आलोचनात्मक ग्रंथों में कवि पंत और उनकी छायावादी कविताएँ, तुलनात्मक शोध और समीक्षा, स्वच्छंदतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन आदि अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'कवि पंत और उनकी छायावादी कविताएँ' शीर्षक आलोचनात्मक ग्रंथ में डॉ. राव जी ने महाकवि सुमित्रानंदन पंत की भावना की रमणीयता, कल्पना की विशदता एवं संश्लिष्टता, शिल्प एवं शैली की सुंदरता का मूल्यांकन अत्यंत विश्लेषणात्मक ढंग से किया है। इस में पंत जी को एक

स्वच्छंदतावादी कवि के रूप में चित्रित करते हुए उनकी तुलना वर्ड्सवर्थ, शेली, बायरन और कीट्स जैसे विशिष्ट विख्यात अंग्रेजी स्वच्छंदतावादी कवियों के साथ की है। 'तुलनात्मक शोध और समीक्षा' इनके दस शोध परक निबंधों का संग्रह है। जिसमें आलोचना के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का समान रूप से निर्वाह किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया तथा उनकी उपादेयता, काव्य बिंब, कल्पना और बिंब, रूपक और बिंब आदि सैद्धांतिक आलोचना के निबंध हैं तो 'जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण', 'निराला और बसवराजु अप्पाराव', 'महादेवी वर्मा और चावलि बंगारम्मा' तथा 'भारतीय काव्य साहित्य में ऊर्वशी की परिकल्पना' आदि व्यावहारिक निबंधों का संग्रह है।

प्रो. पी. आदेश्वर राव जी श्रेष्ठ शोधक भी है। अपने शोध कार्य को इन्होंने 'स्वच्छंदतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक से आलोचना की पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया है। इसमें इन्होंने स्वच्छंदतावाद के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए, उसके आलोक में हिंदी और तेलुगु की स्वच्छंदतावादी काव्य-धाराओं का अत्यंत गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रो. जी. सुंदर रेड्डी और डॉ. पी. अप्पल राजु के साथ मिलकर 'हिंदी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान' नामक आलोचनात्मक निबंध - संग्रह का संपादन किया है। इसमें इन्होंने 'हिंदी साहित्य के विकास में आन्ध्रों का योगदान' शीर्षक से एक बड़ा आलोचनात्मक लेख प्रस्तुत किया है, जिसमें तेलुगु भाषी हिंदी लेखकों के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक उपलब्धि का मूल्यांकन किया गया है।

प्रो. पी. आदेश्वर राव जी ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी काम किया है। प्रो. जी. सुंदर रेड्डी जी तथा प्रो. एस. एम. इकबाल जी के साथ मिलकर 'हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं के समान रूपी भिन्नार्थी शब्द' शीर्षक एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है। यह अध्ययन हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं के समान रूपी भिन्नार्थी शब्दों के समग्र अध्ययन का सर्वप्रथम प्रयास है।

डॉ. सूर्यनारायण भानु एक और उच्च शिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। इनकी प्रथम रचना 'तेलुगु की आधुनिक काव्य-धारा' है, जिस में आधुनिक तेलुगु के पैंतालीस प्रतिनिधियों की चुनी हुई कविताओं का काव्यात्मक अनुवाद है। यह कृति हिंदी साहित्य जगत में समादृत होकर सन् 1968 में प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत हुई। डॉ. भानु की यह योजना थी कि तेलुगु युग-प्रयोक्ता कवियों के लोकप्रिय काव्यों को आलोचना सहित अनुवाद 'तेलुगु के लोकप्रिय कवि' शीर्षक से हिंदी में प्रस्तुत करें। इस साधना से एक तो राष्ट्रभाषा हिंदी समृद्ध होगी। दूसरा तेलुगु कविता को विस्तृत क्षेत्र प्राप्त होगा। इसी आशय से उन्होंने तेलुगु के सुप्रसिद्ध प्रजा कवि 'श्री श्री' की कविताओं के अनुवाद-साधना में रूपायित किया। इसमें श्री श्री की लोकप्रिय एवं बहुचर्चित कविताओं के अनुवाद के अलावा इन कविताओं के विभिन्न पहलुओं की आलोचना भी प्रस्तुत की गयी है। खास कर इन्होंने श्री श्री के मानवतावादी दृष्टिकोण को उजागर किया है। श्री श्री की दृष्टि में सब से बढ़कर मनुष्य ही सत्य है, उससे ऊपर कुछ नहीं है।

डॉ. बालशौरि रेड्डी एक और तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ विविध पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित हुई हैं। 'आन्ध्र भारती' उनकी ऐसी रचना है। इसमें तेलुगु साहित्य से संबंधित अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं। उनकी एक और रचना 'पंचामृत' नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई है। इसमें तेलुगु के प्रसिद्ध कवियों व काव्यों का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है।

श्री वेमूरी राधाकृष्ण मूर्ति भी तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। उनका आलोचनात्मक ग्रंथ 'तेलुगु साहित्य प्रमुख विधाएँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इसमें तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है।

तेलुगु साहित्य की प्रमुख विधाएँ जैसे शतक रामायण, आधुनिक कविता, एकांकी पर परिचयात्मक लेख इसमें संग्रहीत हैं। 'तेलुगु के आधुनिक कवि' उनकी एक और आलोचना प्रधान रचना है।

हिंदी आलोचना के विकास में उस्मानिया विश्वविद्यालय क्षेत्र का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आन्ध्र के विश्वविद्यालयों में उस्मानिया भी एक पुराना विश्वविद्यालय है। यहाँ के हिंदी विभाग से जुड़े आचार्य तथा अन्य कॉलेजों में अध्यापन करनेवाले विद्वान और इनसे अलग कई विद्वानों ने हिंदी आलोचना के विकास में विशेष योगदान दिया है। इस क्रम में कई उल्लेखनीय विद्वान हमारे सामने आते हैं। डॉ. श्रीराम शर्मा जी उनमें से एक हैं। 'बनजारा समाज' नाम से इनकी एक रचना प्राप्त होती है। डॉ. शर्माजी ने मानवीय संवेदना के धरातल पर आदिवासियों की समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक की यह विशेषता है कि इसमें बनजारा समाज के उद्भव - विकास, नामकरण से लेकर उनके पूर्वजों के निवास - स्थान, आजीविका, व्यवसाय, संवैधानिक अधिकार- निवास-स्थान, स्थिति, शिक्षा, आस्था - विश्वास, पर्व-त्योहार, विवाह, पद्धति (संस्कार), भाषा, रहन-सहन आदि तक का विशद विश्लेषण किया गया है।

प्रो. भीमसेन निर्मल जी एक और उच्च शिक्षा प्राप्त तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं। उन्होंने उस्मानिया विश्वविद्यालय में आचार्य एवं अध्यक्ष के पद पर कई सालों तक काम किया है। वे मुख्य रूप से अनुवादक हैं। तेलुगु से हिंदी तथा हिंदी से तेलुगु में उन्होंने श्रेष्ठ अनुवाद किए हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई श्रेष्ठ समीक्षात्मक लेखों के अतिरिक्त समीक्षा की पुस्तकें भी लिखी है। 'तेलुगु साहित्य परिमल' उन में से एक हैं। इस में तेलुगु भाषा एवं साहित्य से संबंधित कई लेख संग्रहीत हैं। इस कृति के दो खंड हैं। पहला साहित्य खंड है। इसके अंतर्गत कुल सात लेख हैं। ये सभी लेख तेलुगु साहित्य से संबंधित है। जैसे तेलुगु का लोकगीत-साहित्य, तेलुगु भाषा और उसका साहित्य, स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु साहित्य, तेलुगु का नाटक साहित्य, तेलुगु का कथा साहित्य, तेलुगु साहित्य में हास्य, तेलुगु कविता में राष्ट्रीय चेतना है। स्पष्ट है कि इन सभी में उन्होंने हिंदी पाठकों को अपने ढंग से तेलुगु साहित्य का परिचय कराने का प्रयास किया है। सरल व स्पष्ट भाषा में लिखे गए ये सभी लेख तेलुगु साहित्य के परिचय कराने में अत्यंत सक्षम हैं।

इस कृति के दूसरे खंड में लेखक ने जिसे कृति - खंड का नाम दिया है, तेलुगु की विशिष्टि कृतियों का परिचय देने का प्रयास किया है। इसमें प्राचीन कृतियों से लेकर आधुनिक कृतियों तक शामिल है जैसे नवनाथ चरित्र : एक परिचय, मोल्ल रामायणमु : एक परिचय, पिंगलि सूरन्न कृत कला पूर्णोदयमु, मालपल्लि, तेलुगु का प्रसिद्ध नाटक : श्रीकृष्ण तुलाभारमु, विश्वनाथ साहित्यमु, तेलुगु का गौरव ग्रंथ : कविकर्ण रसायन। इन सारी तेलुगु कृतियों की उन्होंने मौलिक आलोचना प्रस्तुत की है। इसके अतिरिक्त डॉ. निर्मल जी के कई मौलिक आलोचनात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें बहुत उल्लेखनीय हैं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं तेलुगु साहित्य, तुलनात्मक अनुसंधान की समस्याएँ, तेलुगु के कबीर-वेमना, हिंदी और तेलुगु - अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ, गांधीयुग का प्रकाश स्तंभ : उन्नव लक्ष्मीनारायण पंतुलु कृत- मालपल्लि, ज्ञानेश्वरी : हिंदी तेलुगु अनुवाद : साहित्यिक मल्यांकन, भावात्मक एकता और आन्ध्र साहित्य, भारतीय इतिहास - नया दृष्टिकोण, स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु साहित्य, रामचरित मानस के तेलुगु अनुवाद, भक्ति साहित्य और तुलनात्मक अध्ययन, पिंगली सूरन्न कृत कलापूर्णोदयमु, नवनाथ चरित्र : एक परिचय, आन्ध्र के हिंदी नाटककार : श्री पुरुषोत्तम कवि, नित्य प्रयोगशील कवि : डॉ. सिंगि रेड्डी नारायण रेड्डी आदि।

इनके अलावा प्रो. एम. वेंकचेश्वर जी एक और तेलुगु भाषी हिन्दी आलोचक हैं। इनकी एक आलोचना की पुस्तक 'हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार' बहुचर्चित हैं। डॉ. शुभदा वांजपे एक और आन्ध्र की हिन्दी

आलोचिका है । डॉ. रेखा शर्मा एक और आन्ध्र की हिन्दी आलोचिका हैं । आचार्य जी. सुंदर रेड्डी जी एक और तेलुगु भाषी हिन्दी आलोचक हैं । 'हिन्दी और तेलुगु : एक तुलनात्मक अध्ययन' डॉ. रेड्डी जी का समीक्षात्मक ग्रंथ हैं । आन्ध्र के रायलसीमा प्रदेश में स्थित श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय की ओर से भी हिन्दी आलोचना के विशेष योगदान प्राप्त हुआ ।

डॉ. डी. रामानायुडु एक और तेलुगु भाषी हिंदी आलोचक हैं । वे रायलसीमा प्रदेश के हैं । फिर भी इन्होंने चेन्नै को अपना कार्य क्षेत्र बनाया है । इन्होंने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास में काम किया है । ये अच्छे समीक्षक हैं । इनकी आलोचना की पुस्तकों में 1. हिंदी और तेलुगु की प्रगतिवादी काव्य धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन 2. मार्क्सवाद और उसका मानव तथा साहित्य पर प्रभाव प्रमुख हैं । बड़ी संख्या में इन के आलोचनात्मक लेख प्राप्त होते हैं, विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं ।

8.7. आन्ध्रों का अनूदित साहित्य

हिंदी साहित्य को आन्ध्रों की देन की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है । इसमें सिर्फ आन्ध्रवासी ही हिंदी को समृद्ध कर सकते हैं । वाणिज्जीकरण के इस युग में जहाँ भाषाई सीमाएँ एवं प्रादेशिक सीमाएँ बहुत कठोर बनती जा रही हैं, वहाँ अनुवाद इन सारी संकीर्ण सीमाओं को तोड़ने में सशक्त भूमिका निभा रहा है । भारत जैसे बहु भाषा एवं बहु संस्कृतिवाले देश के लिए अनुवाद ही एकता एवं अखंडता के लिए अत्यावश्यक मंत्र है । इस रूप में वर्तमान संदर्भ में अनुवाद साहित्य का महत्व अत्यधिक है । अनुवाद के लिए दो भाषाओं (स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा) पर अधिकार का होना अत्यावश्यक है । ऐसा अधिकार हिंदीतर भाषी ही रख सकते हैं। जिन को हिंदी के साथ-साथ अपनी एक हिंदीतर भाषा या मातृ भाषा पर भी अधिकार रहता है । इसलिए इस क्षेत्र में आन्ध्रों का योगदान अधिक महत्व रखता है । हिंदी जब से भारत की राज भाषा बनी है तब से भारतीय भाषाओं से उस में अनुवाद करने का कार्य जोर पकड़े हैं । हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने में अनुवाद कार्यों की बड़ी भूमिका होती है। आन्ध्र के हिंदी अनुवादकों ने तेलुगु से हिंदी तथा हिंदी से तेलुगु में बराबर अनुवाद किए हैं । यहाँ पर सिर्फ तेलुगु से हिंदी में संपन्न हुए अनुवाद कार्यों पर ही विचार किया जा रहा है । तेलुगु और हिंदी भाषाओं में कई स्तरों पर समानताएँ हैं । इसलिए अनुवाद प्रक्रिया में कठिनाइयाँ कम हैं । इसलिए ही तेलुगु से हिंदी में अनेक श्रेष्ठ अनुवाद किए गए हैं ।

अनूदित साहित्य आज सृजनात्मक माना जा रहा है । फिर भी सृजनात्मक साहित्य से अनूदित साहित्य अर्वाचीन ही मान लेना चाहिए । आधुनिक भारतीय भाषा साहित्यों के इतिहासों से एक तथ्य सामने आता है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की प्रारंभिक रचनाएँ अनूदित ही हैं । आधुनिक काल में सभी भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद कार्य किए गए हैं । हिंदी में हुए अनूदित साहित्य के इतिहास पर विचार करने से लगता है कि हिंदी में यह कार्य बहुत पहले ही शुरु हो गया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार हिंदी के आरंभिक युग में ही यह कार्य शुरु हो गया है । रवींद्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार प्राप्त होने के बाद तथा सर्वप्रथम आधुनिक भावबोध को ग्रहण करते हुए रचनाएँ बंगला में निकलने के कारण कई अन्य भाषा-भाषियों ने बंगला सीखकर बंगला के साहित्य को अपनी भाषाओं में अनुवाद किया । इसलिए कई पाठक यह जानने में असमर्थ रहे कि प्रेमचंद तथा शरतचंद्र तेलुगु के कथाकार नहीं थे। वे दोनों भिन्न भाषाओं के कथाकार थे ।

आश्चर्य की बात है कि प्रेमचंद का 'सेवासदन' मूल रूप में हिंदी में प्रकाशित होने के कुछ सालों के बाद तेलुगु में अनूदित हुआ । इस के दो अलग अनुवाद तेलुगु में प्राप्त होते हैं । एक अनुवाद सन् 1932 में दोर्नाला भ्रमरांबा के

द्वारा तथा दूसरा 1960 में एन.वी. सोमयाजुलु के द्वारा किया गया। इसी प्रकार प्रेमचंद के गोदान का भी अलग-अलग रूप में तेलुगु अनुवाद किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी को राजभाषा बनाने के बाद हिंदीतर भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करने के कार्य अधिक हो गए। यही नहीं रोज़गार अवसर बढ़कर विकास के फलस्वरूप अनुवाद का महत्व निरंतर बढ़ता गया। परिणाम स्वरूप हिंदीतर भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करने के कार्य और ज्यादा होने लगे हैं।

खासकर दक्षिण के संदर्भ में दक्षिण की प्रमुख भाषाएँ तेलुगु, तमिल, कन्नड़ तथा मलयालम से हिंदी में अधिक अनुवाद हुए हैं और हो रहे हैं। इन प्रदेशों के लोग अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिंदी सीखकर हिंदी में अनुवाद कर रहे हैं। इन प्रदेशों में हिंदी का विकास भी इस के लिए प्रमुख कारण है। दक्षिण में स्थापित हिंदी की विविध संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ने के कारण अनुवादकों की संख्या में श्री वृद्धि हुई है। ध्यान देने की बात है कि इन अनुवादकों ने तेलुगु की सभी विधाओं में समृद्ध तेलुगु साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने की सफल कोशिश की है। फिर विधा के आधार पर देखा जाय तो तीन विधाओं में अधिक अनुवाद हुए हैं। वे हैं कविता, उपन्यास और कहानी। आगे इन्हीं विधाओं के आधार पर विश्लेषणात्मक परिचय कराया जाएगा। आन्ध्र के अनुवादकों ने सबसे पहले अनुवाद के लिए काव्य अथवा कविता को ही चुना है। आज़ादी के पहले ही कई अनुवादकों ने तेलुगु कविता व तेलुगु काव्यों को हिंदी में अनुवाद करने की चेष्टा की है।

8.9. आन्ध्रों का व्यंग्य साहित्य

व्यंग्य साहित्य स्वस्थ समाज और सभ्यता की नाप माना जाता है। सभ्य और विकसित समाज में रहनेवाले ही व्यंग्य लेखन कर सकते हैं और उसका रसास्वादन कर सकते हैं। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठा अधिक है। भारतीय भाषा साहित्यों में हिंदी साहित्य ही ऐसा है कि उसमें स्वतंत्र रूप से व्यंग्य लेखन करनेवाले मूर्धन्य लेखक हैं। हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, नरेंद्र कोहली, लतीफ घोंघी, रवींद्रनाथ त्यागी जैसे दर्जनों व्यंग्य लेखकों ने हिंदी व्यंग्य साहित्य को समृद्ध किया है। उसी प्रकार हिंदीतर प्रदेशों में रहनेवाले लेखकों में आन्ध्र के भगवान दास झोपट तथा मटमरि उपेंद्र भी अपने व्यंग्य लेखन के लिए जाने जाते हैं। व्यंग्य लेखन सामाजिक विसंगतियों के संदर्भ में होता है। एक अच्छा व्यंग्य लेखक सामाजिक विसंगतियों में पेंचकश की तरह प्रवेश कर जाता है और इसी कला में उसकी रचनात्मकता निहित है। सामाजिक विसंगतियों के झरोखे खड़ाकर व्यंग्य लेखक समाज को पहचानने में हमारी सहायता करता है। व्यंग्य साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें सचेतनता अधिक होती है। एक व्यंग्यकार एक कवि के ठीक विपरीत चेतना की जागृत अवस्था में होता है और समाज की नस-नाडियों के सड़े हुए अंश पर छुरी चलाता जाता है। इस कारण से व्यंग्य साहित्य में तीखापन और तिक्तता होती है। श्रेष्ठ व्यंग्य रचना जीवन का विरेचन करती है। विरेचन व्यक्ति का भी होता है और समाज का भी। अतः अच्छे व्यंग्य लेखक एक सुचिकित्सक, एक सामाजिक क्रांतिकारी भी होता है। व्यंग्य में आधुनिकता की पहचान भी होती है। व्यंग्यकार समाज- चेतन व्यक्ति भी होता है। व्यंग्यकार में तार्किकता, बुद्धिवादिता और संशय आदि के तत्व होते हैं।

व्यंग्य की यह पहचान हिंदी के व्यंग्य लेखकों में देखी जा सकती है। इसमें हिंदी और हिंदीतर भाषी दोनों शामिल हैं। खासकर आन्ध्र के व्यंग्य लेखकों में यह दृष्टि दिखाई पड़ती है। उन्होंने अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से हिंदी व्यंग्य साहित्य को महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐसे व्यंग्य लेखकों में भगवानदास जोपट और मटमरि उपेंद्र उल्लेखनीय हैं। 'भैंस संस्कृति' के लेखक के रूप में भगवानदास जोपट हिंदी जगत में विख्यात है। प्राचीन परंपरा और संस्कृति की दृष्टि से हमारे देश में गाय या गौ को अधिक महत्व दिया गया है। कभी गाय को भारत के प्रतीक के रूप में

प्रतिष्ठित करने की कोशिशें हुई हैं। ऐसे भगवानदास जी ने गाय की जगह भैंस को महत्व दिलाने का प्रयास किया है। उन्होंने गौ की रूढ़ियों को ध्वस्त कर भैंस की क्रांतिकारी चेतना को प्रतिष्ठित करने के कारण वे युगांतकारी लेखक बने हैं। युगांतकारी यानी जो युग में अंतर कर दे, युग को बदल दे। जैसे माईकेल मधुसूदन दत्त ने उन्नीसवीं सदी में 'मेघनाथ वध' महाकाव्य लिखकर इंद्रजीत को खलनायक के पद से अपदस्थ कर महानायक के रूप में स्थापित कर एक युगांतकारी कार्य किया। वैसे ही जोपट जी ने भी सदियों से भारतीय संस्कृति के प्रतीक गाय के स्थान पर भैंस को प्रतिष्ठित कर एक युगांतकारी कार्य किया है। उन्होंने धर्म स्थापना के क्षेत्र में नयी संवेदनशीलता को प्रतिष्ठित किया है। चेतना में कुछ नया मोड़ देना एक ताकतवर आदमी का लक्षण होता है।

व्यंग्य रचना के अपने कुछ निकष होते हैं। व्यंग्य में आक्रामकता ही मुख्य है। एक सफल व्यंग्यकार के रूप में जोपट जी की मुख्य विशेषता वाकपटुता है। वे वाक विस्तार से वस्तु विस्तार करते हैं। वस्तु विस्तार उन की व्यंग्य रचना का मुख्य कौशल है। जोपट जी अपने व्यंग्य को दांपत्य की लीक और आकर्षण में ढ़ालकर भी धारदार बनाते हैं।

जोपट जी ने स्थानीय एवं सामाजिक जीवन संबंधी विषमताओं पर भी व्यंग्य बाण चलाये हैं। वे हैदराबाद नगर निगम की स्वच्छता का जायजा लेते हैं। व्यंग का तात्पर्य यह कि व्यंग्य का लक्ष्य सामाजिक बदलाव है। यह प्रतिशोध मूलक साहित्य नहीं है। भारतीय लोक तंत्र ही सब के लिए जिम्मेदार है। जोपट जी 'जूता चिंतन' नामक व्यंग्य निबंध में भारतीय लोकतंत्र के पाखंड की मखौल उड़ाते हैं। राजनीतिक व्यंग्य की रचना में भी जोपट जी एक कलाकार की प्रतिभा दिखाते हैं।

विसंगति ही व्यंग्य का मूलाधार है। यह विसंगति समाज में मानवीय तथ्यों के लोप होने से उत्पन्न होती हैं। मटमरि उपेंद्र इसी सामाजिक विसंगति के व्यंग्य लेखक हैं। उपेंद्र जी का एक निबंध है 'वायरल फीवर'। दंगा और लूटपाट हो जाने के बाद की स्थिति ही उस समाज का असल व्यंग्य है। व्यंग्य में अतिशय कल्पना भी होती है।

श्री उपेंद्र जी ने शिक्षा के जगत में व्याप्त विसंगतियों का पर्दाफाश भी किया है। उपेंद्र जी के सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य बहुत ही धारदार होते हैं। यह मान्यता है कि व्यंग्य लेखक आउट साईडर होता है। वह अपने वर्तमान समाज में अभियोजित नहीं हो पाता है।

व्यंग्य लिखना कोई आसान काम नहीं है। व्यंग्य लिखने के लिए तलवार की धार पर चलने का अभ्यास करना पड़ता है। क्योंकि व्यंग्यकार को व्यंग्याधार से हमेशा बचकर रहना पड़ता है। इसके साथ जिन मूल्यों के खिलाफ कलम चलायी जा रही है मूल्यों का समर्थन भी अपने निजी जीवन में उसे करना पड़ता है। जीवन की आलोचना करनेवाले व्यंग्य साहित्य के लेखन के लिए व्यंग्यकार को आलोचना से हमेशा बचे रहना पड़ता है। दूसरों की कमज़ोरियों एवं दुर्बलताओं पर तभी हंसा जा सकता है। जब स्वयं उनसे मुक्त होता है। इसलिए व्यंग्यकार को बेहद ईमानदार, दृढ़ संकल्प चित्त और साहसी होना आवश्यक है। स्पष्ट है कि ये सभी गुण भगवानदास जोपट और मटमरि उपेंद्र में कूट-कूट भरे पड़े हैं। इसलिए हिंदीतर प्रदेश के होते हुए भी उन्होंने श्रेष्ठ व्यंग्य रचा है।

8.10. सारांश

सारांश के रूप में यह कह सकते हैं कि आन्ध्र में हिन्दी सेवा करनेवाले प्रत्येक को हिन्दी सिर्फ जीविका मात्र नहीं है। बल्कि वह उनकी भावुकता का कार्य है। कई साहित्यकार अपना समाज बदलने के लिए वह नश्तर का प्रयोग करते हैं। यहीं उसकी भूमिका कवि से भिन्न हो जाती है। तेलुगु भाषी हिन्दी साहित्यकारों में से मटमरि उपेंद्र और

भगवानदास जोपट हिंदीतर प्रदेश के होते हुए भी हिंदी के हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे मूर्धन्य व्यंग्यकारों की परंपरा में ही आते हैं। हिंदी के गद्य साहित्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, अनूदित साहित्य और व्यंग्य साहित्य में साहित्यकारों के उपलब्धियाँ सदा याद रहेंगी।

8.11. बोध प्रश्न

1. आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य में उपन्यास, कहानी, नाटक के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

2. आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य में निबंध, आलोचना, अनूदित और व्यंग साहित्य के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

8.12. सहायक ग्रंथ

1.तेलुगु भाषा का इतिहास- मूल तेलुगु लेखक- आचार्य वेलमला सिम्मान्ना, हिंदी रूपांतर- प्रो. एस. ए .सूर्यनारायण वर्मा।

2. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य -डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी।

3. बीस वीं सदी का तेलुगु साहित्य – संपादक- डॉ. विजयराघव रेड्डी।

4. आचार्य पी. आदेश राव जी का अभिनंदन ग्रंथ- संपादक- आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।

5. तेलुगु साहित्य और संस्कृति- संपादक- अमरसिंह वधान।

6. आन्ध्र में हिन्दी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति।

डॉ. सूर्य कुमारी.पी

Model Paper

M.A. DEGREE EXAMINATION

Third Semester-Hindi

Paper-III- HINDI LITERATURE OF ANDHRAS

आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य

Max-70 Marks

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

सभी प्रश्नों के अंक समान है।

Time: 3Hours (5x14=70)

1. (a) आधुनिक तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(अथवा)

(b) आधुनिक तेलुगु साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत क्या है।

2. (a) प्राचीन तेलुगु साहित्य का इतिहास का युग और प्रवृत्तियों के बारे में चर्चा कीजिए।

(अथवा)

(b) तेलुगु भाषा साहित्य का परिचय दीजिए।

3. (a) हिन्दी -तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(अथवा)

(b) आन्ध्रों का हिन्दी के पद्य और गद्य साहित्य के विधाओं के बारे में विस्तृत परिचय दीजिए।

4. (a) आन्ध्रों का हिन्दी साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत और वर्गीकरण पर चर्चा कीजिए।

(अथवा)

(b) भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण पर सार गर्भित लेख लिखिए।

5. (a) किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) आन्ध्रों का हिन्दी अनुवाद साहित्य।

(ii) थियोसाफिकल सोसाइटी।

(iii) भारतीय भाषा लिपियों का वर्गीकरण।

(iv) एस्ट्र- एशियाटिक भाषा परिवार।

(अथवा)

(b) किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) श्रीनाथ युग।

(ii) हिन्दी भक्तिकाल और तेलुगु के रायल युग।

(iii) स्वतंत्रता आन्दोलन में आन्ध्रों की भूमिका।

(iv) तेलुगु साहित्यकार।